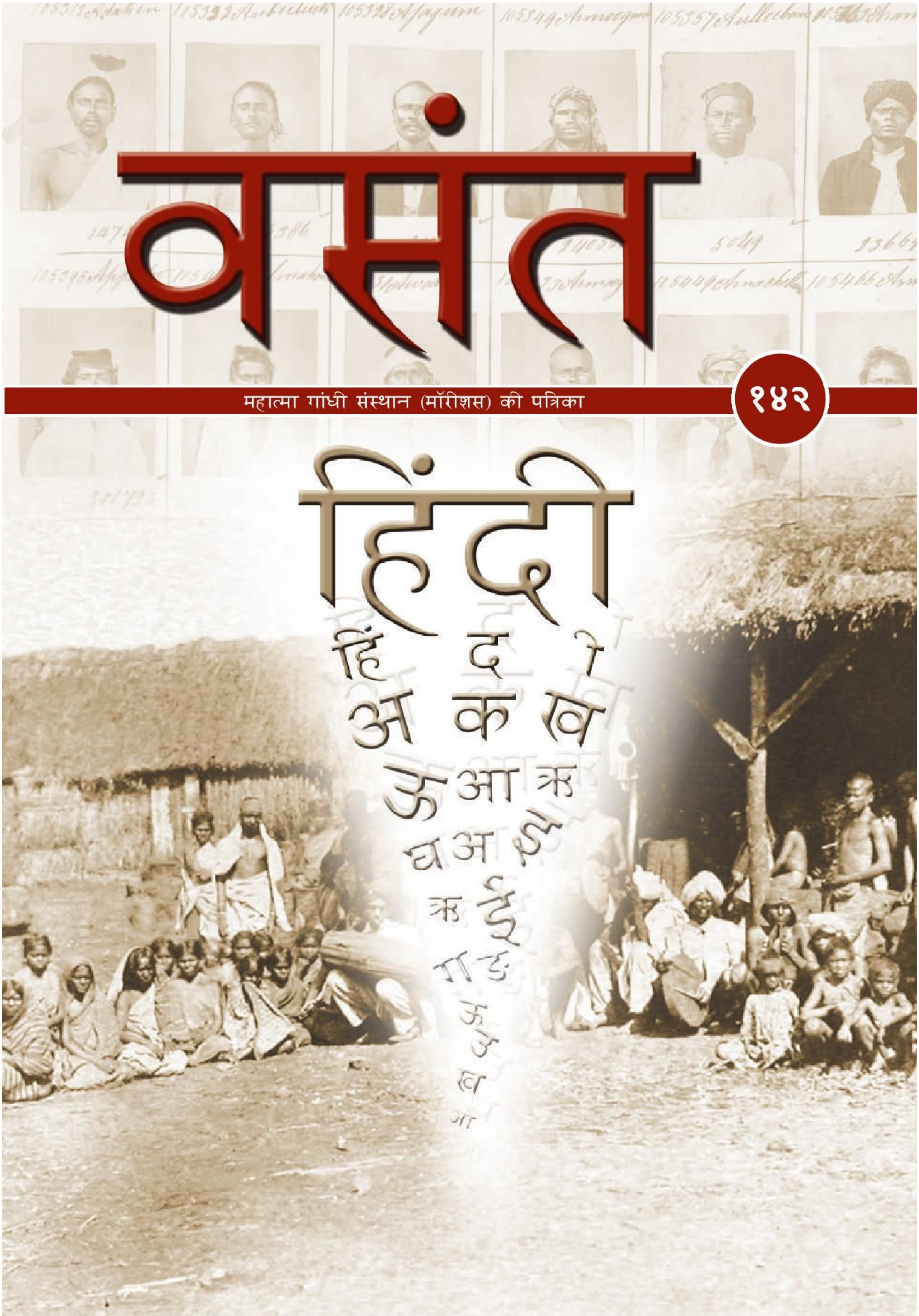
वसंत
महात्मा गांधी संस्थान (मॉरीशस) की पत्रिका
१४२
हिंदी

श्रद्धांजलि

अभिमन्यु अनत (मॉरीशस)

(०९ अगस्त १९३७ - ०४ जून २०१८)

'रचना'

जीवन से प्यार तो करता हूँ
लेकिन
अपनी नई लिखी जाने वाली
रचना की अगली पंक्ति
जैसा नहीं
इसलिए उन पंक्तियों के बदले
जीवन का एक भी ज़्यादा पल
लेने से इन्कार करता हूँ।

(गुलमोहर खौल उठा)

वसंत

अस्मिता और सर्जना का त्रैमासिक

वर्ष : ३१ ★ अंक १४२ ★ २०१८ ★ प्रति २५ रु ★ विदेश 2 U.S.D प्रति

विषयानुक्रमणिका

		पृष्ठ
संपादकीय	- डॉ अलका धनपत	३
लेख		
मॉरीशस में भारतीय संस्कृति और उसे घेरे चुनौतियाँ	- *अभिमन्यु अनत*	
'पूस की रात' में वर्णित मूल समस्याएँ	- विश्वानन्द पतिया	
बहु-सांस्कृतिक समाज में सहनशीलता	- शिक्षा धनपत	
शोध-पत्र		
लोक साहित्य में स्वतन्त्रता संघर्ष	- डॉ पूरनचंद टंडन	
साहित्य और सिनेमाः कितने दूर, कितने पास	- डॉ उमेश कुमार सिंह	
मॉरीशस में हाइकू का प्रचलन	- डॉ इन्द्रदेव भोला इन्द्रनाथ	
कहानी		
शिकायत	- डॉ हेमराज सुन्दर	
फिर हुआ एक सपने का अन्त	- सोमदत्त काशीनाथ	
सरेण्डर	- अमरेन्द्र सुमन	
सालों दे मे (गतिविधि)	- डॉ अलका धनपत	
कविता		
तीर्थ यात्रा	- सूर्यदेव सिबरत	
बेरोजगारी का समुन्दर/शहरी-संस्कृति की ओर	- डॉ हेमराज सुन्दर	
प्रतिभा और गरीबी	- सोमदत्त काशीनाथ	

रिश्तों की महक/मखौल/ - चन्द्रमोहन सोरिफ़ा
दिल की ज़मीन/नया सम्बल/ - दिविक रमेश
नज़दीक से पूरा समाज हो जाती हूँ /
ये तीसरे लोग
प्यारा मेरा मॉरीशस - कीर्ति देवी रामजतन
इश्क में भीगे गीत - डॉ सुरीति रघुनंदन

'वसंत में प्रकाशित रचनाओं के तथ्यों का उत्तरदायित्व महात्मा गांधी संस्थान या संपादक के ऊपर न होकर, रचयिताओं के ज़िम्मे होता है।

- मुख्य सम्पादक

पत्रिका से संबंधित किसी भी विवाद (यदि कोई हो तो) का न्यायें क्षेत्र मॉरीशस ही मान्य होगा।

संपादक मंडल
डॉ अलका धनपत
(विभागाध्यक्षा), मुख्य संपादक
सह-संपादक
डॉ० हमेराज सुन्दर
उपसंपादक
श्रीमती श्रीति रामपल

प्रकाशक
महात्मा गांधी संस्थान, मोका, मॉरीशस
टाइप सेटिंगः शीला दिगम्बर
: दिशा प्रताप
कलात्मक पृष्ठ सज्जाः शीला दिगम्बर

संपर्क सूत्रः
डॉ अलका धनपत
मुख्य संपादक 'वसंत'
महात्मा गांधी संस्थान, मोका,
मॉरीशस

Phone (+230) 4032000
Fax: (+230) 4332164
Email: creativewritingdept@gmail.com
Website : http://www.mgirti.org
Mahatma Gandhi Institute, Moka,
Mauritius

सम्पादकीय

- *डॉ अलका धनपत*

सन् २०१८ अगास्त, १८-१९-२० को मॉरीशस में ग्यारहवें विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन हो रहा है। देश में विशेष रूप से हिन्दी जगत में एक अलग सा ही उत्साह दिखाई दे रहा है। इस उत्साह में कितने ही विदेशी-रचनाकार, विदेशी हिन्दी-प्रेमी भी मॉरीशस हिन्दी जगत के रचनाकारों से मिलने की इच्छा लिए यहाँ आ रहे हैं। वे अभिमन्यु अनत जी से भी मिलना चाहते थे। इस बीच नियति ने कुछ और ही निर्णय ले लिया। चार जून २०१८ दोपहर को मिले एक शोक समाचार ने हिन्दी जगत को स्तब्ध कर दिया! आप्रवासी हिन्दी साहित्य के पुरोधा श्री अभिमन्यु अनत चल बसे। सम्पूर्ण हिन्दी-जगत में यह खबर ईमेल, वाट्सअप, फ़ेसबुक तथा अन्य माध्यमों से तुरन्त ही पहुँच गई। सभी उन्हें संवेदनापूर्ण शब्दों के भाव-सुमन अर्पित करते रहे। बहुमुखी प्रतिभा के धनी, वसंत' पत्रिका की कल्पना को रूप देने वाले तथा सत्तर से अधिक रचनाओं के रचनाकार को 'वसंत' परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि।

'वसंत' पत्रिका के माध्यम से मॉरीशस के हिन्दी रचनाकारों को देश-विदेश के पाठक पढ़ते हैं, सराहते हैं। महात्मा गांधी संस्थान की यह पत्रिका विदेशी विद्वज्जनों को भी छाप कर, स्थानीय पाठकों तक उनके विचारों को पहुँचाती है। हिन्दी की यह त्रैमासिक पत्रिका सन् १९७८ से आज तक अनवरत छप रही है! कभी-कभी हम हिन्दी को लेकर चिंतित हो जाते हैं पर यह चिंता यदि चिंतन में बदल सकें तो हिन्दी की धारा को नई दिशा मिल सकेगी। अब तो हिन्दी जगत् हिन्दी को यू.एन.ओ की भाषा के रूप में देखने के सपने ले रहा है।

मॉरीशस ने हिन्दी को अपनी सांस्कृतिक भाषा के रूप में आज भी संजोया हुआ है। मीडिया में आने वाले हिन्दी के कार्यक्रम तथा समाचार उसके प्रचार-प्रसार के प्रमाण

हैं। भारत और मॉरीशस के बीच सांस्कृतिक संबंध तो हैं ही वहीं बढ़ते विकास के चरणों में भी सहभागिता किसी से छिपी नहीं है।

वसंत पत्रिका का नया अंक आपके हाथ में हैं, इसमें जहाँ कहानी, कविता तथा आलेख हैं वहीं शोध-पत्रों के माध्यम से पाठकों के ज्ञान में वृद्धि भी होती है। यह पत्रिका जहाँ स्थापित लेखकों को छापती है वहीं नवोदित लेखक भी लिखने के लिए प्रोत्साहित होते हैं।

देश में हिन्दी का अध्ययन-अध्यापन द्वितीय भाषा शिक्षण के रूप में होता है और महात्मा गांधी संस्थान भाषाओं के प्रचार-प्रसार का कार्य लगातार कर रहा है। वसंत पत्रिका का छपना, उसी कार्य की महत्वपूर्ण कड़ी है।

वसंत पत्रिका में हमारे छात्रों, हमारे अध्यापकों तथा हमारे हिन्दी के रचनाकारों का सहयोग सदा रहा है। लेखक के साथ-साथ वे पाठक भी हैं। हिन्दी जगत का यह उत्साह वसंत पत्रिका के छपने के उद्देश्य को सफल बनाता है। वसंत का बसन्त तो पाठकों की रचनाओं के फूलों से ही सुरभिसन् २०१८ त होता है। हिन्दी का कारवां यदि इसी लगन तथा निष्ठा के साथ चलता रहा तो नई पीढ़ी के उभरते रचनाकारों की रचनाएँ भी अपनी पहचान बना पाएँगी।

साहित्यिक विधाओं में उपन्यास, कहानी, लघु-कथा, कविता, लघु कविता, व्यंग्य, हाइकू, ग़ज़ल आदि पर तो मॉरीशसीय हिन्दी साहित्य रचनाकारों द्वारा लिखा ही जा रहा है। पर कुछ विधाएँ अभी भी प्रतीक्षा में है जैसे डायरी, संस्मरण, आत्मकथा, रेखाचित्र, आलोचना, इतिहास आदि! आज आवश्यकता है हिन्दी के मंचों की, जहाँ पर हिन्दी में, हिन्दी पर संवाद हो सके। सृजनात्मक लेखन को लेकर विचार-विमर्श हो सके! तभी कारयित्री प्रतिभाओं को प्रेरणा मिलती है और वे लेखन की ओर बढ़ पाते हैं। संस्थान की वसंत पत्रिका में सभी नवोदित तथा अग्रज रचनाकारों की रचनाओं का हार्दिक स्वागत रहेगा।

मॉरीशस में भारतीय संस्कृति और उसे घेरे चुनौतियाँ

- अभिमन्यु अनत

जिन दिनों भारतीय संस्कृति अपनी पराकाष्ठा पर थी, उन दिनों विश्व के कई देशों को 'रामायण का देश' कहकर सम्बोधित किया जाता था। वे चाहे थाईलैंड, मलेशिया, श्रीलंका रहे हों या जावा, सुमात्रा, बाली। यही नहीं इनमें भी दूर तक फैले देशों में भारत की भाषा और महाभारत तथा अन्य भारतीय ग्रन्थों की कथाएँ अपनी सांस्कृतिक छाप के साथ वहाँ के जन-जीवन से जुड़ी हुई थीं।

आज यूरोपियन की भाषा और सांस्कृतिक स्वाभिमान के कारण पूरी तस्वीर बदल गई है। यूरोपियन संस्कृति और भाषा विश्व के इस छोर से उस छोर तक फैलती चली जा रही है। पर भारतीय संस्कृति और भाषा, दूसरे देशों की बात तो दूर रही, अपनी ज़मीन से उखड़ती सी प्रतीत हो रही है।

इतना कुछ होते हुए विश्व में चंद देश आज भी ऐसे हैं, जहाँ भारतीय संस्कृति वहाँ के जन-जीवन की सबसे बड़ी धरोधर ही नहीं, बल्कि उनकी अस्मिता भी है और उन देशों में सब से प्रमुख मॉरीशस है, जिसे करीब दो सौ वर्ष पहले भारत से पहुँचे मज़दूरों ने मारीच देश कहा था।

इस देश में रामायण की गूँज शुरू हुई, तो लोगों के बीच मारीच को मिले आशीर्वाद की सार्थकता का एहसास होना शुरू हो गया था। भारतीय आप्रवासियों की उस पहली घड़ी से आज तक मॉरीशस राम नाम के गुँजन का द्वीप बना रहा।

आज के आधुनिक मॉरीशस में, जिसे विकासशील देशों में प्रमुखता दी जाने लगी है,, रामायण के सत्संग भी उसी रफ़्तार के साथ विकसित होते रहे हैं।

जीवन के सबसे विकट क्षण में जब किसी आत्मीय जन के निधन की शोकाकुलता मन को व्यथित करती है, रामायण ही परिवार के आत्मीयजनों को धीरज बँधाती है। मृत्यु के समय और उसके बाद भी रामचरितमानस की चौपाइयाँ और दोहे शोकाकुल परिवार को सांत्वना प्रदान करते हैं और जीवन को फिर से बल देते हैं।

मॉरीशस में भारतीय संस्कृति व परम्परा पूर्णतया जीवित हैं, क्योंकि इसे संजोया और सँवारा है यहाँ के आम आदमियों ने। यही कारण है कि यहाँ संस्कृति और परम्परा एक सूत्र में पिरोयी हुई-सी मिलती है।

आधुनिकता की सारी उपलब्धियों को स्वीकार करते हुए भी मॉरीशस के गाँवों और शहरों ने भारतीय परम्परा से जुड़कर रामायण के प्रति अपनी आस्था को बनाए रखा है। वे सत्संग चाहे झांल-ढोलक के साथ हो, चाहे गीत-भजनों के साथ हो, या पाठ और विवेचन के रूप में, वे आज भी उसी श्रद्धा और अनुराग के साथ होते हैं।

अंतर केवल इतना है कि मॉरीशस में भारतीयों के आगमन के समय ये पाठ यातना शिविरों जैसी बस्तियों में होते थे, आज वे भव्य पंडालों, शानदार घरों और रेडियो-टेलिविजन के ज़रिए हो रहे हैं। यहाँ भारतीय विषयों पर केवल गाँवों ओर गलियों के नाम ही नहीं रखे गए हैं, बल्कि सिनेमा घरों, दुकानों और बसों तथा लॉरियों के नाम भी नालंदा, सूर्यवंशी बनारस, सम्राट अशोक तथा अजंता आदि रखे गए हैं।

भारतीय सांस्कृतिक सदर्भो में यहाँ डाक टिकट समय-समय पर निकलते रहे हैं। मॉरीशस वह देश हैं, जहाँ प्रगति और आधुनिकता के साथ-साथ पारम्परिक मूल्यों को नकारा नहीं स्वीकारा गया, बल्कि उन्हें बनाए रखा गया है। भारतीय संस्कृति, भाषा और धर्म के उस विचार की चर्चा करें, तो हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम उन परिस्थितियों की ओर एक बार ध्यान दें, जिनके बीच से होकर सफ़ेद सोने (शक्कर) के देश में भारतीय संस्कृति आंतरिक शक्ति के रूप में फैली हुई है।

यहाँ प्रगति के नाम पर संस्कृति की नीलामी नहीं हुई तथा औरों के मुखौटों को अपने चेहरों पर लगाकर अति आधुनिक होने के फ़ख्र से अभी वह देश मुक्त है। सभी आधुनिक सुविधाओं और तामझाम के बीच भी आनंद और आत्मशान्ति की तृप्ति यहाँ आज भी तीज-त्योहारों और सांस्कृति उत्सवों से ही प्राप्त की जाती है।

इतिहास के छात्र इस बात को जानते हैं कि भारत में जब अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों के बीच संघर्ष चल रहा था, तब दो प्रमुख सामरिक सेनापति थे क्लाइव और डुप्ले। मॉरीशस में उन दिनों फ्रांसीसियों का राज्य था। भारत में अपनी स्थिति को बेहतर बनाने के लिए अंग्रेज़ों की नज़र मॉरीशस पर गई, क्योंकि यह एक ऐसे सामरिक महत्व का क्षेत्र था, जहाँ से हिन्द महासागर पर धाक जमायी जा सकती थी।

अंग्रेज़ों ने मॉरीशस पर आक्रमण किया और उसे फ्रांसीसियों से जीत लिया। फ्रांसीसियों ने हारकर सत्ता तो अंग्रेज़ों के हवाले कर दी, लेकिन अपनी सांस्कृतिक शक्ति अंग्रेज़ों के हवाले नहीं की। इसका परिणाम यह हुआ कि मॉरीशस अंग्रेज़ों के कब्ज़े में तो आ गया, पर फ्रांसीसियों की सांस्कृतिक पकड़ के कारण फ्रेंच भाषा वहाँ ज़ोर पकड़ती गई। और उसके साथ ही उनका साहित्य और संस्कृति विस्तार पाते गए।

यह फ्रांसीसियों का अपनी भाषा और संस्कृति के प्रति अनुराग का ही अंजाम था कि राजनीतिक सत्ता को खो कर भी उन्होंने अपने सांस्कृतिक साम्राज्य को बनाए रखा। यही नहीं उन्होंने अपने आसपास के द्वीपों और देशों तक अपनी भाषा और संस्कृति का विस्तार किया।

विश्व के अन्य देशों में भारत जहाँ अपने सांस्कृतिक प्रभाव व लोकप्रियता को बढ़ाने तथा बचाने के प्रयास में लगा है, वहीं यूरोप भी धीरे-धीरे अपनी भाषा तथा संस्कृति को बढ़ाने में लगा है। वे देश भी अब अंग्रेज़ीदां देश कहलाने लगे हैं जो कल तक राम और बुद्ध के रंगों में रंगे हुए थे। श्रीलंका, इंडोनेशिया और वर्मा जैसे देशों में भारतीय संस्कृति संघर्ष कर रही हैं।

भारतीयों के आप्रवास के समय मॉरीशस पर अंग्रेज़ों का राज्य शुरू हो चुका था, पर ज़मीन के अधिकारी फ्रेंच थे। उनकी की शक्कर की कोठियों में काम करने के लिए भारतीय वहाँ गिरमिटिया मज़दूर के रूप में पहुँचे थे। वे खाली हाथ नहीं आये थे। उनके साथ थे रामचरितमानस, हनुमान चालीसा जैसे धार्मिक ग्रंथ तथा गंगा और हिमालय की आस्था। ये गिरमिटिया मज़दूर उर्वर संकल्प लिए, इस अनजान और बंजर धरती पर पाँव रख आगे बढ़े थे।

मॉरीशस में और भी कई देशों के लोग पहुँचते रहे, पर चट्टानों की भूमि और तूफ़ानों के इस देश से लौटते रहे। यहाँ भारतीयों ने अपने आत्मविश्वास के बल पर चट्टानों की छातियों को चीर कर उनमें गन्ने उगाए। हिमालय की सहनशीलता के साथ हर तूफ़ान का सामना किया।

भारतीयों को यहाँ यह प्रलोभन देकर ले जाया गया था कि इस देश में पत्थरों को उलाटने से सोना मिलता है। उन्हें पत्थर उलट कर सोना तो नहीं मिला, पर उनके माथे से बही पसीने की बूँदें खेतों में मोती के रूप में उगती रहीं। उन्हें जहाँ रोटी के लिए पसीने के साथ खून भी बहाना पड़ा, वहाँ उन्होंने पथरीली ज़मीन को हरा-भरा बनाया। संस्कृति, धर्म और भाषा के लिए दारुण दण्ड भी झेले। फिर भी अभियान जारी रहा।

दूसरी ओर फ्रांसीसियों को जहाँ उन मज़दूरों के पसीने की बूंदों को निचोड़ कर अपनी तिजोरियाँ भरनी थीं, वहीं उन्हें उन बेबस भारतीयों पर अपनी भाषा, संस्कृति और अपना धर्म भी थोपना था, ताकि वे कुली कहलाने वाले अपनी जड़ और पहचान से कट जाएँ और हमेशा के लिए उनके दास बनकर रह जाएँ। अपने इस मंतव्य की पूर्ति

के लिए फ्रांसीसी पूँजीपतियों ने ऐसा क्या कुछ नहीं किया। पर खैर, वह तो अलग विषय बन जाता है।

इतिहास वैसे भी झूठ बोलता है और मॉरीशस में तो वह गूँगा भी बना रहा। इतिहास का गूँगा होना उसके झूठ बोलने से अधिक खतरनाक सिद्ध हुआ। झूठ तो बस तब बोला जाता है जब इतिहास लिखवाए जाते हैं। उसमें अध्याय व पन्ने, आर्थिक व राजनीतिक सत्ता के बल पर लिखवाए जाते हैं। इतिहास का गूँगा होना, मॉरीशस में इतिहास की हत्या सा लगता है।

मार्क ट्वेन जैसे लेखक को मॉरीशस यात्रा के दौरान यह कहने को विवश हो जाना पड़ा कि भगवान ने पहले मॉरीशस को बनाया होगा, फिर उसकी नकल पर स्वर्ग को बनाया होगा। लेकिन बंजर भूमि को स्वर्ग बनाने वाले उन महान भारतीय मज़दूरों को अब कौन जानता है? उनके नाम खुद इतिहास में नहीं मिलते, जिन्होंने खुद इतिहास का निर्माण किया था।

ज़मीनदारी ताकत के सभी प्रलोभनों पाबंदियों और प्रतिबंधों के बावजूद, ये मज़दूर कोड़ों और बाँसों की बौछारों को सहकर भी चोरी-चोरी अपनी भाषा, संस्कृति और धर्म से जुड़े रहे। उन्हें अपनी भाषा में अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता इसलिए नहीं थी कि कहीं वे गोरे मालिकों के विरुद्ध कोई षड्यंत्र न कर बैठे। उन्हें रामायण पढ़ने या लोक-गीत गाने से भी इसलिए रोका जाता, कि कहीं उनके बीच से विद्रोह जन्म न ले ले।

भारी निगरानी के बीच उन्होंने कोयले के टुकड़ों से लिखकर अपने बच्चों को अक्षरज्ञान और शब्द बोध कराए। आँगनों में हनुमान जी के छोटे-छोटे चौतरे बनाकर तथा गाँवों में कालीमाई की स्थापना करके, अपने लोगों को विधर्मी होने से रोका।

लगभग दो सौ साल बाद भी आज भारतीय वंशजों के हर आँगन में हनुमान जी के चौतरे और लाल झंडियों लगी हैं, जो उनके संथर्ष की याद दिलाती हैं। मॉरीशस के गाँवों और शहरों में शायद ही कोई ऐसा घर हो, जहाँ हनुमान जी के चौतरे के सामने लाल ध्वज गन्ने के खेतों में बहे "लाल पसीने" की गवाही न देते हों। इतिहास की अनकही सत्य कथाओं की गवाही में मॉरीशस महिलाओं के माथे पर आज भी यह रंग उतनी ही बुलन्दी के साथ चमकता रहता है।

उन मज़दूरों का सबसे बड़ा संकल्प और साहस तब सामने आया, जब उन्होंने कानूनन गुलामी के समाप्त होने के बाद भी दासत्व झलते हुए, गाँव-गाँव में बैठकाओं की नींव

डाली। १९०१ में मॉरीशस में गांधी जी के आगमन से उनका हौसला और भी बढ़ा। उन्हें इतनी चेतना तो अवश्य थी कि बैठकाएँ उनकी भाषा, संस्कृति और धर्म की रक्षा के लिए संजीवनी बूटी का कार्य करेंगी।

लेकिन तब वे यह नहीं जानते थे कि कोई डेढ़ सौ साल बाद वे इन्हीं बैठकाओं में नेताजी सुभाषचन्द्रबोस, महात्मा गांधी और नेहरू जी की चर्चा भी कर पाएँगे और अपने द्वीप की स्वतंत्रता की प्रेरणा भी पा सकेंगे।

समस्त गाँवों और शहरों की बैठकाओं से पहली बार मॉरीशस की आज़ादी का आह्वान हुआ। पंडित विष्णुदयाल ने संस्कृति को और बुलंदी देने के लिए जन-आंदोलन शुरू किया और डॉ शिवसागर रामगुलाम के नेतृत्व में मॉरीशस को ऐसी प्रतिकूल स्थिति में आज़ादी मिली, जब फ्रेंच भाषा के सभी समर्थक इसके विरुद्ध थे।

मॉरीशस के राष्ट्रपति शिवसगर रामगुलम ने आज़ादी के लिए उसी ऐतिहासिक तारीख को चुना था, जिस दिन गांधी जी ने डांडी यात्रा शुरू की थी। देश के गोरे, अधगोरे और मलगासी नस्ल के क्रिओल आज़ादी के बाद भारतीय वंशजों के प्रतिशोध और शोषण की कल्पना मात्र से भयभीत होकर भारी संख्या से पलायन कर आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका, कनाडा आदि देशों में जा बसे थे। लेकिन आज अपनी भूल के एहसास के बाद एक-एक करके वे लौटने लगे हैं।

भारतीय मुल्क के लोगों में अपनी संस्कृति की प्रेरणा से क्षमा, सहनशीलता और भाईचारे की भावना रही है। इसी कारण आज सभी जाति और धर्म के लोग एक राष्ट्र और एक संस्कृति के रूप में जी रहे हैं। अब वे स्वयं यह मानने को विवश हैं कि अल्पसंख्यकों का इतना विकास शायद ही किसी दूसरी संस्कृति वालों के वर्चस्व में संभव होता।

लेकिन संस्कृति, भाषा और धर्म का यह अभियान आसान नहीं था। आज यहाँ पर भारतीय संस्कृति के भव्य स्वरूप को देखकर खुद भारत से पहुँचे भारतीयों को सुखद आश्चर्य होता है। बहुत बार तो भारतीय कहते हैं कि मॉरीशस में भारतीय संस्कृति, धर्म, जीवन-मूल्य, परम्परा रीति-रिवाज़ और लोक-संस्कारों को देखते हुए लगता है कि एक दिन शायद भारत को अपने इन मूल्यों की तलाश में मॉरीशस पहुँचना पड़े। अगर यह बात सौ प्रतिशत लागू नहीं भी होती हो तो भी निराधार नहीं। मॉरीशस वासियों में धार्मिक भेद के बावजूद भी सांस्कृतिक एकता है।

भारतीय संस्कृति केवल मॉरीशस के घरों की चारदीवारियों में ही सुरक्षित नहीं है बल्कि पूरी जीवन प्रणाली में है। चाहे गोद भराई के मौके की रस्म हो या बच्चे के जन्म पर गोत्र और नामकरण के साथ सोहर और ललना गाने का प्रचलन हो या नामकरण संस्कार, जनेऊ, बरछिया पद्धति हो या गृह प्रवेश हो या अन्तिम यात्रा का क्षण, सभी भारतीय इन संस्कारों का पालन करते हैं। विवाह चाहे कितने ही आधुनिक ढंग से क्यों न हो पर भोज आज भी केले के पत्ते पर पूड़ियों और साग-सब्ज़ियाँ के ही होते हैं। माटी कोड़ाई, इमती घोंटाई, तिलक, हल्दी से लेकर अग्नि के भांवर के बीच कोई बीस रस्मों का निर्वाह भारतीय सांस्कृतिक पद्धति के अनुसार ही होता है। गांवों में बिरहा और हरपरौरी जैसे लोक गाायन सुनने को मिलते हैं।

सूखा पड़ने पर ज़मींदार चाहे वे गैर भारतीय ही क्यों न हो, पूरे विश्वास के साथ-साथ सारा खर्च वहन करके हरपरौरी गवाते और धान रोपन की रस्मों को पूरा करवाते हैं। युवा पीढ़ी फ्रेंच और अंग्रेज़ी गाने सुन तो लेती है पर गुनगुनाती है हिन्दी, भोजपुरी और उर्दू गज़ले ही।

आज मॉरीशस में भारतीय भाषाओं की नाट्य प्रतियोगिता में अंग्रेज़ी और फ्रेंच से कई गुना अधिक नाटकों के मंचन होते हैं। यही बात स्थानीय टेलीविजन की ओर से गानों की प्रतियोगिता को लेकर है। ७२० वर्गमील और बारह लाख की आबादी वाले छोटे से देश में ५०० से अधिक प्रतियोगी सामने आ जाते हैं । हिन्दी गाने के लिए यहाँ लोक संस्कृति का यह दूसरा रूप भी देखने को मिलता है। जैसे की होली के अवसर पर भांग और दीवाली के मौके पर ताश और चौपड़ के खेल की प्रथा अभी भी बनी हुई है।

नए देश मॉरीशस में अभी विरासत में मिली चीज़ें उतनी पुरानी प्रतीत नहीं होतीं। या तो हम सभी इतने आधुनिक नहीं हुए है कि पारिवारिक रिश्तों को पराये नाम दे पाएं। हमारे यहाँ चाचा-चाची, मौसा-मौसी अभी अंकल-आंटी में परिवर्तित नहीं हुए है। और न ही पति हसबैंड में। भारतीय संस्कृति की धरोधर में मिली माँ आज भी हमारे यहाँ माँ है, मम्मी नहीं बनी है। सुबह शाम के अभिवादन भी हमारे यहाँ गुड मारनिंग और गुड नाइट में नहीं बदला है। वह अभी नमस्ते और प्रणाम ही है। यहाँ गाँवों के नाम कहीं लाल माटी है तो कहीं पंचवटी । कहीं कुरुमंडल, ब्रह्मस्थान, गोकुल, काशी या बनारस। कुछ सांस्कृतिक मूल्य द्वीप के शहरों से तो नहीं पहुँच पाए, पर गाँवों में आज भी बने हुए है। जैसे कि शादी-ब्याह के दौरान पास-पड़ोस के लोगों का सहयोग ज़रूरतमंद परिवारों के लिए पंडाल और विवाह मण्डप (माड़ो) बनाने से

लेकर शादी के घर के आर्थिक बोझ बाँटने वाली प्रथा के तहत कोई अपने ज़िम्मे सब्ज़ियों की जिम्मेवारी ले लेता है तो कोई चावल आटे की।

कुछ लोग अपनी-अपनी औकात के बलबूते पर उनकी अलग-अलग आवश्यकताओं की पूर्ति कर जाते हैं। कोई पंद्रह दिन पहले से ही पड़ोस की महिलाएँ घर के कम-काज़ों में साथ बँटाना शुरू कर देती हैं। गाँव की बैठकाओं के सदस्यों और नवजवानों की भूमिका भी महत्त्व रखती है।

भारतीय संस्कृति और रीति-रिवाज़ यहाँ पर थोड़ी--बहुत अलग पहचान भी बना चुके हैं। जैसे कि गाँवों में मित्रों और रिश्तेदारों के बीच जाम उठाते हुए चीयर्स नहीं कहा जाता, बल्कि ग्लास हाथ में उठा कर एक दूसरे को नमस्ते कहते हैं, फिर उस हाल से गले के नीचे उतारते हैं। दूसरी ओर दहेज जैसी प्रथा मॉरीशस में देखने को भी नहीं मिलती। दीवाली के अवसर पर लाखों बिजली के बल्बों के बीच मिट्टी के चिरागों की जलती लौ अपनी सही पहचान रखे हुए हैं।

नया साल, संक्राति और व्रत-त्यौहारों में जहाँ प्रायः अन्य देशों में यह देखा जाता है कि युवाओं का रुझान कम हो रहा है। कुछ हद तक कुछ लोग इसे पिछड़ापन भी कह सकते हैं। लेकिन इसके साथ ही यह प्रश्न भी किया जाता है कि क्या आज के खून-खराबे, नशाखोरी दंगे, फसाद, हत्याएँ, आतंकवाद तथा अन्य मानवीय अवमूल्यनों के बीच सचमुच युवा पीढ़ी में धार्मिक चेतना पिछड़ेपन का द्योतक हो सकती है? महाशिवरात्रि के अवसर पर गंगा तालाब पर पूरे देश भर से जो यात्री पहुँचते हैं उनकी संख्या देश की आधी आबादी से अधिक होती है, जिनमें प्रायः युवा लोग सफेद धोती-कुर्ता और चूड़िदार या साड़ियों में होते हैं। इस त्योहार की तैयारी पंद्रह दिन पहले से होती हैं। भव्य काँवरों के साथ तथा भजन-कीर्तन करते पदयात्रियों और देश भर के सैकड़ों मंदिरों की शंख-ध्वनियों और घण्टों की आवाज़ें महाशिवरात्रि को देश का सब से भव्य त्यौहार बना देती है।

मॉरीशस का यह एकमात्र त्यौहार है, जो अंतर्राष्ट्रीय रूप ले चुका है। आज दक्षिण-अफ्रीका, रियूनियन द्वीप तथा अन्य स्थानों से भक्तजन शिव पूजन के लिए इस छोटे से टापू में पहुँचते है। इसी तरह रक्षा-बंधन को भारतीय संस्कृति से जुड़े भाई-बहन के त्यौहार को भी मानाया जाता है। गंगा स्नान के अवसर पर कोई सौ समुद्र तटों पर, जिसे उस दिन देश में गंगा का स्वरूप माना जाता है, पूरा मॉरीशस उमड़ पड़ता है। गंगा मैया की पूजा-अर्चना के लिए।

ये तीन त्यौहार इस द्वीप के प्राण हैं। यहाँ के लोगों ने दूसरों की संस्कृति का स्वागत किया है पर अपनी संस्कृति के मूल्यों को खंडित होने नहीं दिया है। बच्चों की सालगिरह को लोग मेज़ पर केक रख कर मना लेते हैं पर हवन-पूजा के बाद ही केक काटा जाता है। मोमबत्ती बुझाते है पर दीया जलाने की रस्म है। क्योंकि हमारी संस्कृति जन्मदिन पर दीये जलाने की प्रेरणा देती है न कि बुझाने की सीख, जो कि मृत्यु का प्रतीक है।

मॉरीशस के त्यौहारों का सब से अधिक महत्व है। फिर भी छुट्टी यहाँ कोई सात भारतीय तीज़-त्यौहारों के लिए ही होती है। जिनमें शामिल है - शिवपुत्र कार्तिक की पूजा, कावड़ी, महाशिवरात्रि, गणेश जयन्ती, वर्षापिरपू, दीवाली और युगादी। यहाँ के गैर भारतीय फ्रेंच लेखक अपने उपन्यास, कविता-संग्रह या नाटक के नाम सुमित्रा, द्रोपदी, नमस्ते या सीता रखने में स्वयं को रोक नहीं सके हैं।

भारतीय संस्कृति की एक विशेष उपलब्धि की झलक जो मॉरीशस के गाँवों में विशेषकर देखने को मिलती है- वह यहाँ का अतिथि सत्कार, जिसके बारे में भारतीय तक यह कह जाते हैं कि लगता है वे अपने किसी गाँव के परिजनों के बीच पहुँच गए है। और विदेशी पर्यटक तो यह कहते नहीं थकते कि ऐसी मेहमानवाज़ी तो उन्होंने बहुत कम देखी है।

भारतीय संस्कृति की गवाही यहाँ के पहाड़, नदी और तालाब तक देते हैं। एक ओर देश का मौन प्रहरी जिसका नाम मुड़िया पहाड़ है, वह परियों को दिये वचन भंग का प्रायश्चित करता हुआ मानव आकृति में समाधि साधे बैठे दिखता है। दूसरी ओर परी तालाब गंगा की सी निर्मलता लिए सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की अनुभूति दिलाता है। ग्री-ग्री के समुद्र-तट के प्रलयंकर ज्वारभाटे शिव के ताडंव नृत्य की भंगिमा प्रस्तुत करते हैं। सुबह शाम आसमान पर चमक आए इन्द्रधनुष अर्जुन के गाडीव की प्रत्यंचा का एहसास दिला जाते हैं।

यहाँ महात्मा गांधी संस्थान के प्रांगण में भारतीय संगीत और नृत्य सीखने अफ्रीका, रीयूनियन और आसपास के द्वीपों से छात्र-छात्राएँ आते हैं और यहाँ के कलाकार इन भारतीय कलाओं के प्रदर्शन के लिए दुनिया के इस छोर से दूसरे छोर तक पहुँचते रहते है। कला, धर्म, संस्कृति के इस आदान-प्रदान से लगता है कि भगवान् बुद्ध का भारत एक प्रतीक के रूप में आज भी यहाँ विद्यमान है।

यह भारतीय संस्कृति का ही प्रमाण है कि लघुभारत कहलाने वाले इस एक सौ चौहत्तर वर्ष के प्रवासी इतिहास में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, फ्रांसीसी, अंग्रेज़, चीनी सभी भाईचारे से रहते है। यह भारतीय संस्कृति की महानता है कि यहाँ के भारतीय वंशजों ने इस बात की परवाह लिए बिना कि दूसरे भी वैसा करते हैं या नहीं, अपनी संस्कृति के साथ दूसरों की संस्कृतिक भी आदर किया और उसे अपनाया है।

दूसरी संस्कृति के लोग बुद्ध, मीरा, कालिदास, रविशंकर, सोनाल मानसिंह और पन्नालाल घोष को या भारतीय भाषाओं को न जानने पर भी ईसा-मसीह, विक्टर यूगो, बीथोवन व फ्रेंच, अंगोज़ी और उनके साहित्य को कुछ हद तक उन लोगों से बेहतर जानने का गौरव रखते हैं।

सांस्कृतिक स्वाभिमान की एक जीती-जागती तस्वीर मेरे अपने ही गाँव में अभी चंद महीने पहले मुझे देखने को मिली। एक विधवा गाय पाल कर अपने तीन बच्चों को पालती आ रही थी। उसकी दो गायों में से बूढ़ी हो जाने के कारण दम तोड़ गई और उसके कुछ ही सप्ताह बाद उसे पता चला कि उसकी दूसरी गाय बूढ़ी हो चली है। न बछड़े की सम्भावना थीं और न ही दूध की। उस विधवा की दयनीय दशा को देखकर गाँव के कुछ लोगों ने उससे बार-बार कहा कि उस बेकार गाय को बेचकर उस पैसे से दूसरी गाय खरीद ले। पर वह बार-बार कहती रही कि वह अपने बच्चों को भूखा रख सकती है पर गाय को कसाई ले साथ नहीं बेच सकती । पता नहीं भारत में यह घटना कितनी दकियानूसीपूर्ण मानी जाती होगी; पर मॉरीशस में बहुत कम लोग ऐसे मिलेंगे जो सांस्कृतिक परम्पराओं को उखाड़ फेंकने की बात सोचते हों।

ऐसे बहुत कम लोग हैं कि संस्कृति एक कुँआ है और डरते है कि उसमें डुबकी लगाने का मतलब होगा उसमें डूब मरना। पर यहाँ जो संस्कृति को कुआँ नहीं सरोवर मानकर चलते हैं, उन्हें विश्वास है कि डुबकी लगाने का मतलब है मुट्ठी में मानव हित के लिए नए मंत्र की सीपी लिए ऊपर आना। इसीलिए मॉरीशस में परम्परा और संस्कृति एक दूसरे के पूरक भी है और पर्याय भी। और इस एकात्मकता को उस द्वीप में पहुँच कर ही समझा जा सकता है।

संस्कृति की नीलामी करने वाले को दयनीयता से मरते देखा जा सकता है लेकिन संस्कृति पर मर मिटने वाले को यहाँ कभी रोटी का मुहताज होकर मरते नहीं देखा गया है। यहाँ यह ज़रूरी है कि कुछ लोग विसंस्कृतिकरण को फैशन समझ कर अपने को रंग लेते हैं और उसे समय की धारा मानकर उसमें मरी हुई मछली की तरह बहने लगते हैं।

देश में आज भारतीय संस्कृति जिस तरह अलग-अलग खेमो में जाकर खड़ी हो रही है, उससे तो ऐसे आसार लगने लगे हैं कि अब यह अभियान अपनी अस्मिता को बनाए रखने वाले उस डेड़ सौ साल पहले वाला ऐतिहासिक अभियान से भी ज्यादा ज़बरदस्त होगा।

सांस्कृतिक साम्राज्य स्थापित करने को आतुर शक्तिशाली देश पहले भी अपना रंग यहाँ दिखाते रहे हैं। आज तो और भी बहुत सारे प्रलोभनों के साथ इस प्रयोजन पर ज़ोर दिया जा रहा है। इतिहास की प्रथम घड़ी से मॉरीशस पहुँचे जहाजी भाइयों को विभाजित करने की प्रक्रिया चल पड़ी थी। पर तब भी और अब भी अपनी संस्कृति के बल पर वे एक सूत्र में बंधे रहे।

संस्कृति और परंपरा को जीवित रखने वाले, आधुनिकता के दिखावे के साथ जीने को विवश दिख रहे हैं। उधार के कपड़े पहने, वे इतने बेढंगे और भोंदू दिखाई देने लगे है कि संस्कृति उधार देने वाले भी उन्हें देख हंस देते है। और प्रतिबद्ध कहे जाने वाली अपनी ये संस्थाएँ आपस में तू-तू-मैंमैं करने में इस कदर उलझी हुई हैं कि उन्हें पाँवों के नीचे सरक रही ज़मीन का पता तक नहीं।

जिस रफ़्तार से आज रोज़ एक नया देश यूरोपियन तहज़ीब और जुबान को कबूल करने लगा है, उसमें तो यही लगता है कि मॉरीशस भी विसंस्कृतिकरण के कगार पर खड़ा है। लेकिन इस खतरे से स्थिति निहत्थेपन की न होकर आज भी प्रश्न कर जाने की में है कि क्या ये ताकतवर देश हमारी दाल, रोटी,चावल के साथ क्या हमारा संस्कार भी हम से छीन सकते हैं? हनुमान के चौतरे और लाल ध्वज को ये मॉरीशस से हटा देने की शक्ति रखते हैं? क्या ये मॉरीशस की महिलाओं की माँगों में उनके सिन्दूर और माथे से टीका हटा सकते हैं? और क्या कृष्ण और राधा की भूमिका में नृत्यकर रहे मॉरीशस के कलाकारों के पाँवों के घुँघरुओं की झंकारों को ये प्रलोभनों से खरीद सकते है?

अपनी सरकर से जीवन भर नचिकेता और अर्जुन से प्राप्त सांस्कृतिक बल पर मैं प्रश्न करते रहने के खतरों से तो गुज़रता रहा हूँ पर आज हिन्द महासागर के बीच चल रहे उस सांस्कृतिक तूफ़ान को देखते हुए भी नज़रे अनायास पूरब की ओर चली जाती है। उस गूँज और धुँध में भी उम्मीद बनी हुई है कि अगर भारत सरकार औौर यहाँ की सांस्कृतिक संस्थाएँ मॉरीशस के प्रति थोड़ी अधिक जागरूकता दिखाएँगी तो मॉरीशस वहाँ के सारे प्रलोभनों के बीच भी रामायण का देश बना रह सकता है। और उसकी वही नियति नहीं होगी जो उन सभी देशों की हुई, जिन्हें कभी राम और कृष्ण बय का देश कहा जाता था।

अगर मॉरीशस को भारत से महत्व और प्यार मिला पर भी तो यहाँ की यह आशंका मिट कर रहेगी कि इस द्वीप पर भी फीजी जैसी कोई त्रासदी की पुनर्रावत्ति हो सकती है। मॉरीशस और भारत का यह नागरिक कम से कम अपने देश के उन तमाम नागरिकों की सांस्कृतिक भूमि से इतनी कामना तो कर ही सकता है।

(वसंत ७९ से साभार)

चींटी से मेहनत सीखिए
बगुले से तरकीब
और
मकड़ी से कारीगरी

अपने विकास के लिए अंतिम समय
तक संघर्ष कीजिए।
संघर्ष ही जीवन है।
"अपनी जिंदगी के किसी भी दिन
को मत कोसना"!!!

"क्योंकि",
"अच्छा दिन खुशियाँ लाता है"!!!
"और बुरा दिन अनुभव"!!!
"एक सफल ज़िंदगी के लिए दोनों
ज़रूरी होते हैं" ...!!!

- अब्दुल कलाम

'पूस की रात' में वर्णित मूल समस्याएँ

- विश्वानन्द पतिया

मूर्धन्य हिन्दी कहानीकार श्री प्रेमचन्द कृत *'पूस की रात'* शीर्षक कहानी एक समस्यामूलक रचना है। इसमें हल्कू नामक मुख्य पात्र के माध्यम से भारतीय खेतिहरों के जीवन से सम्बन्धित विषमताओं व कटुताओं का नग्न चित्रण हुआ है। निम्न अनुच्छेदों में उपर्युक्त कृति में वर्णित मूल समस्याओं पर सोदाहरण विचार किया जाएगा।

ठण्ड की समस्या

प्रकृति की शक्ति के समक्ष मानव स्वयं शक्तिहीन बन जाता है। प्रकृति को चुनौती देना अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारने के सदृश्य है। ठण्ड, गरमी, तुफ़ान, भूकम्प आदि प्रकृतिसे ही उत्पन्न होते हैं और मानव-जाति इस यथार्थता से अनभिज्ञ नहीं है। विवेच्य कहानी का मुख्य पात्र 'ठण्ड' का सामना करने में अपने आप को सर्वथा असमर्थ पाता है। उस अपने खेत की रखवाली के लिए रात्रि में, खेत ही में, रहना पड़ता है। ठण्ड से बचने के लिए उसके पास कम्बल नहीं था। थोड़ी गरमी प्राप्त करने के लिए हल्कू ने कूत्ते (जबरा) को अपनी गोद में सुला लिया। इस सन्दर्भ में एक उदाहरण उल्लेखनीय है -

"कुत्ते की देह से जाने कैसी दुर्गंध आ रही थी, पर उसे अपनी गोद में चिपटाए हुए ऐसे सुख का अनुभव कर रहा था, जो इधर महीनों से उसे न मिला था।... हल्कू की पवित्र आत्मा में तो उस कुत्ते के प्रति घृणा की गंध तक न थी।"

कहने का यह तात्पर्य है कि ठण्ड से पीड़ित हल्कू पर अपने ही कुत्ते की दुर्गन्ध का कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा था क्योंकि वह पूर्णतः ठण्ड की चपेट में आ गया था।

उसका दिमाग केवल ठण्ड से बचने के उपाय के बारे में ही सोच रहा था। प्रेमचन्द ने उस ठण्ड की स्थिति को अपने नपे तुले शब्दों में, और भी अधिक यथार्थ ढंग से, प्रस्तुत किया है। उदाहरण द्रष्टव्य हैः

"रात ने शीत को हवा से धधकना शुरू किया। हल्कू उठा और दोनों घुटनों को छाती से मिलाकर सिर को उसमें छिपा लिया, फिर भी ठंड कम न हुई। ऐसा जान पड़ता था, सारा रक्त जन गया है, धमनियों में रक्त की जगह हिम बन रही है।"

ठण्ड के मौसम में सभी लोग अपने घर पर रहना पसन्द करते हैं, कम्बल ओढ़कर सोना पसन्द करते है परन्तु हल्कू को परिस्थितिवश खेत ही में रात बितानी पड़ती है। असह्य ठण्ड से ग्रसित होने के कारण वह नीलगायों से अपने खेत की रक्षा करने में भी सर्वथा अक्षम रहता है। नष्ट खेत को देखते हुए उसकी पत्नी मुन्नी उससे कहती है कि ***"अब मजूरी करके मालगुजारी भरनी पड़ेगी।"*** तब हल्कू प्रसन्न होकर कहता है - ***"रात को ठंड में यहाँ सोना तो न पड़ेगा।"*** हल्कू के इस वाक्य में असह्य ठण्ड से उत्पन्न पीड़ा की अनुभूति होती है। उस समय वह जाड़े से बचने हेतु किसी भी चीज़ की उपेक्षा करने के लिए सर्वदा तत्पर है।

हल्कू की तरह ऐसे कई खेतिहर हैं जो ठण्ड से पीड़ित होने के कारण अपने खेत की रखवाली भली-भाँति कर नहीं पाते हैं। प्रेमचन्द हमारा ध्यान इसी ठण्ड की समस्या की ओर आकृष्ट करना चाह रहे हैं और जनता व सत्ता पर आसीन व्यक्तियों को इस कठिन परिस्थिति पर विचार करने के लिए बाध्य कर रहे हैं।

आर्थिक वैषम्य

विवेच्य कहानी का आरम्भ ही आर्थिक समस्या की चर्चा से होता है। हल्कू कर्ज़ में डूबा हुआ है और जब सहना अपने कर्ज़ के पैसे लेने के लिए हल्कू के यहाँ आता है, तब उसकी पत्नी मुन्नी जमा किये हुए पैसे देने से मना करती हुई कहती है - ***"... तीन ही तो रुपए हैं, दे दोगे तो कंबल कहाँ से आएगा? माघ-पूस की रात हार (खेत) में कैसे कटेगी? उससे कह दो, फसल पर दे देंगे।"*** हल्कू और उसकी पत्नी मुन्नी ने अपने कठोर परिश्रम से तीन रुपए जमा किये थे कंबल खरीदने के लिए और ये पैसे उनके हाथ से निकल जाते हैं। प्रेमचन्द ने हल्कू की निर्धनता को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है। इस सन्दर्भ में एक उदाहरण विशेष उल्लेखनीय है-

"हल्कू ने रुपए लिए और इस तरह बाहर चला, मानो अपना हृदय निकाल कर देने जा रहा हो। उसने मजूरी से एक-एक पैसा काट-काट कर तीन रुपए कंबल के लिए जमा किए थे । एक--एक पग के साथ उसका मस्तक अपनी दीनता के भार से दबा जा रहा था।"

पैसे न होने के कारण हल्कू एक कंबल नहीं खरीद पाता। फलतः ठण्ड उस पर पूरी तरह हावी हो जाता है। भारतीय ग्रामीण इलाकों में हल्कू जैसे और कई खेतिहर होंगे जो कर्ज़ में डूबकर अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने में अपने आप को नितान्त असमर्थ महसूस करते होंगे। प्रेमचन्द ऐसे विपन्न किसानों के प्रति इस कहानी के माध्यम से, अपनी सहानुभूति प्रकट कर रहे हैं।

शोषण की समस्या

आलोच्य कहानी में सहना शोषक और हल्कू शोषित वर्ग के प्रतीक हैं। सहना जैसे लोग हल्कू जैसे गरीब किसानों का शोषण करने में प्रसन्नता की अनुभूति करते हैं। उन्हें निर्धनों को सताने में एक अजीब खुशी मिलती है। ज्योंहि हल्कू तीन रुपए जमा करता है, सहना तुरन्त आकर वे पैसे भी निर्दयतापूर्वक माँगकर चला जाता है। हल्कू के हाथ भी पत्थर के नीचे हैं और सहना के समक्ष वह अपने आपको लाचार महसूस करता है। हल्कू जैसे गरीब खेतिहर अपनी मेहनत से अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिए प्रयत्न तो करते हैं परन्तु सहना जैसे शोषक वर्ग के लोग अधिकांश गरीब किसानों के जीवन को दुखमय बना देते हैं। हल्कू की पत्नी मुन्नी भी इस प्रकार के शोषित जीवन से तंग आकर कहती है- "बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जन्म हुआ है।" अर्थात् गरीबों का जन्म सिर्फ़ कर्ज़ (पैसे) चुकाने के लिए हुआ है। सहना जैसे लोग गरीब किसानों के जीवन को दुष्कर या बोझिल बना देते हैं। जान बूझकर वे ऐसी विषम परिस्थितियाँ हल्कू जैसे विपन्न किसानों के जीवन में उत्पन्न करते हैं ताकि वे आजीवन कर्ज़ के बोझ तले दबे रहें।

वस्तुतः सहना उस निर्दय व्यक्ति का प्रतीक है जो अपने पैसे के बल पर हल्कू जैसे खेतिहरों को सताता है और उन्हें चैन की साँस लेने नहीं देता। सर्वविदित है कि भारतीय ग्रामीण परिवेश में मुख्यतः *"जिसकी लाठी उसकी भैंस"* वाला सिद्धान्त प्रचलित है। सहना के पास सत्ता या धन रूपी 'लाठी' है और इस के बल पर वह गरीबों से अनुचित लाभ उठाता है।

इच्छाओं की अपूर्ति

आलोच्य कृति में हल्कू तथा मुन्नी की इच्छाओं की अपूर्ति का नग्नांकन हुआ है। ठण्ड के मौसम में एक कंबल शरीर के लिए एक 'कवच' के रूप में काम आता है। कंबल के बिना ठण्ड को सहना आसान नहीं होता। कंबल खरीदने के लिए हल्कू पैसे तो जमा करता है पर वे पैसे भी उसके हाथों से फिसल जाते हैं। कहने का यह तात्पर्य है कि गरीबों की इच्छाएँ अधूरी अथवा अपूर्ण ही रहती है और भारतीय ग्रामीण इलाकों में यह एक ज्वलन्त समस्या बन गई है। अपने सपने को साकार न होते देख मुन्नी गुस्से में अपने पति से कहती है - ***"तुम छोड़ दो अबकी से खेती। मजूरी में सुख से एक रोटी खाने को तो मिलेगी। किसी की धौंस तो न रहेगी।"*** अर्थात् वह हल्कू को खेती छोड़कर दूसरे लोगों के खेतों में मजदूरी करने का परामर्श देती है क्योंकि स्वयं खेती करने से उनकी इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो पाती है।

इच्छाएँ अतृप्त रहने से शनै"-शनै" इच्छाएँ भी मरने लगती हैं और फिर आदमी भी जीते-जी मरने लगता है। यही स्थिति है हल्कू और मुन्नी की! हल्कू तो मन-मानकर जीवन-यापन करने लगता है और परिस्थितियों का दास बनकर अपना काम भी सुचारू रूप से नहीं कर पाता।

अकर्मण्यता की जटिलता

काम न करने की स्थिति या भावना को 'अकर्मण्यता' कहते हैं। विवेच्य कृति के अंतिम भागों में हल्कू को एक *'अकर्मण्य'* प्राणी के रूप में चित्रित किया गया है। इस सन्दर्भ में एक उदाहरण द्रष्टव्य है - ***"... हल्कू गरम राख के पास शान्त बैठा था। अकर्मण्यता ने रस्सियों की भाँति उसे चारों तरफ से जकड़ रखा था।"*** अर्थात् ठण्ड से पीड़ित होने के कारण हल्कू अपने हाथ पाँव चलाने में असमर्थ था।

इस उदाहरण के माध्यम से प्रेमचन्द यह बताना चाहते हैं कि प्रकृति या प्राकृतिक तत्वों के आगे मनुष्य कुछ भी नहीं ! ठण्ड, गरमी, तूफ़ान आदि के आगे व्यक्ति काफी हद तक हार मान लेता है परन्तु अपने प्रयत्न से उनसे बचने के लिए कुछ उपाय भी ढूँढ लेता है। घर आदि का निर्माण करके हम ठण्ड-गरमी आदि से बच जाते हैं परन्तु उस व्यक्ति के बारे में सोचिये जो प्रकृति की गोद में (खेत में) रहकर ठण्ड

से जूझ रहा है। हल्कू अपने खेत की रखवाली करने गया है परन्तु रखवाली नहीं कर पाता क्योंकि वह असह्य ठण्ड की चपेट में आ जाता है और फलतः अकर्मण्य बन जाता है।

इस जटिल परिस्थिति का वर्णन करते हुए प्रेमचन्द पाठकों को ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट करना चाह रहे हैं कि एक खेतिहर अपनी इच्छा से *'कामचोर'* नहीं बनता। परिस्थितिवश वह ऐसा बनने पर विवश हो जाता है। इस तथ्य की तुलना 'कफ़न' शीर्षक कहानी से की जा सकती है जिसमें 'घीसू' और *'माधव'* को अकर्मण्य व्यक्तियों के रूप में चित्रित किया गया है। वास्तव में वे दोनों विपरीत हालातों के शिकार होने के कारण काम से जी चुराने लगते हैं। यही स्थिति हल्कू की भी है।

समानाधिकार का अभाव

प्रेमचन्द *'पूस की रात'* के माध्यम से जनता को यह भी बताना चाह रहे हैं कि भारतीय समाजों में समानाधिकार की कमी के कारण भी अनेकानेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। उनके मतानुसार गरीब और अमीर या निम्न वर्ग और उच्च वर्ग के लोगों के बीच की आर्थिक दूरी जब तक बनी रहेगी तब तक कठिनाइयाँ पनपती रहेंगी। हल्कू जैसे लोग निर्धन होते चले जाते हैं और सहना जैसे व्यक्ति धनवान बनते चले जाते हैं। इस सामाजिक अन्याय से विरुद्ध प्रेमचन्द ने अपनी आवाज़ उठाई है। एक उदाहरण विशेष उल्लेखनीय है जिसमें समाज की आर्थिक अव्यवस्था का सजीवांकन हुआ है - ***"एक-एक भगवान ऐसे पड़े हैं, जिनके पास जाड़ा जाए तो गर्मी से घबड़ाकर भागे। मोटे--मोटे गद्दे, लिहाफ, कंबल। मजाल है, जाड़े का गुज़र हो जाए। तकदीर की खूबी है। मजूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें।"*** अर्थात् जिसके पास पैसे है वही समृद्ध, ऐश्वर्यपूर्ण व भाग्यवान होता है। हल्कू जैसा गरीब कोल्हू के बैल की तरह काम करे, फसल उगाए और काटे, फिर बाद में सब पैसे सहना जैसे लोगों की जेबों में चले जाएँ, यह कहाँ का न्याय है? इस प्रकार प्रेमचन्द इस आर्थिक अव्यवस्था के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त कर रहे हैं। इसी आर्थिक अव्यवस्था के कारण हल्कू सहना के आगे कुछ बोल नहीं पाता और यदि कुछ बोलता भी है तो उसकी बातों पर कोई ध्यान नहीं देता। दूसरी ओर जब सहना कुछ बोलता है तब उसके वचन 'ब्रह्म-वाक्य' बन जाते हैं अर्थात् उन पर अमल करना अनिवार्य हो जाता है। सपने देखने और उसको साकार करने का अधिकार केवल धनवानों के पास है, गरीबों के पास कोई अधिकार नहीं!!! इसी समस्या की ओर भी प्रेमचन्द ने पाठकों का ध्यानाकृष्ट किया है।

निष्कर्षतः यह सर्वथा प्रमाणित होता है कि *"पूस की रात"* में ठण्ड की समस्या, आर्थिक वैषम्य, शोषण की समस्या , इच्छाओं की अपूर्ति, 'अकमर्ण्यता तथा समनाधिकार के अभाव से सम्बन्धित जटिलता का यथार्थ चित्रण हुआ है। इन विषमताओं का उल्लेख करते हुए प्रेमचन्द सामाजिक प्राणियों को इस वास्तविकता का बोध करा रहे हैं कि इन समस्याओं का हल ढूँढने के बाद या इन्हें कम करने के पश्चात् ही एक स्वस्थ समाज की कल्पना की जा सकती है।

प्राध्यापक
संस्कृत विभाग
महात्मा गांधी संस्थान

१

"आग बहती है यहाँ गंगा में झेलम में भी
कोई बतलाए कहाँ जा के नहाया जाए ।
प्यार का खुन हुआ क्यूँ ये समझने के लिए
हर अँधेरे को उजाले में बुलाया जाए।"

२

"आदमी को आदमी बनाने के लिए,
ज़िंदगी में प्यार की कहानी चाहिए।
और उसे लिखने के लिए,
स्याही नहीं आँखों वाला पानी चाहिए।"

-गोपाल दास नीरज
(४ जनवरी १९२५-१९ जुलाई २०१८)

बहु-सांस्कृतिक समाज में सहनशीलता

- *शिक्षा धनपत*

हमारा समाज बहु-सांस्कृतिक, बहु भाषीय एवं बहुजातीय है। मन, विचार तथा रुचियों का परिष्कार एवं शिष्टजनों का आचार-विचार, रहन-सहन एवं जीवन पद्धति है। हिन्दू धर्म में '*वसुधैव कुटुम्बकम्*' तथा *सर्वभूते* '*हिते रत*' की संकलना है।

मानवता का विकास व सम्मान ही संस्कृति धर्म का मूल तत्व है। हमारे मॉरीशसीय समाज में भिन्न-भिन्न धर्मों पर आस्था रखने वालों का अस्तित्व है। उदाहरणार्थ मैं यदि मात्र अपनी गली, अपने पड़ोस पर नज़र डालूँ, तो यहाँ पर हिन्दुओं के साथ-साथ मुसलमान, चीनी, ईसाई आदि सभी समुदायों के लोग खुशी-खुशी बसे हुए हैं। यह सहनशीलता का सबसे प्रथम व बड़ा प्रमाण है। हालाँकि हमारे हृदय में एक दूसरे के प्रति मान-सम्मान की भावना कम नहीं है। हम एक दूसरे की खुशियों में तो सम्मिलित होते ही हैं परन्तु विपदा के समय में भी पड़ोसियों का साथ नहीं छोड़ते हैं। जब किसी पर विपत्ति पड़ती है तो भाषा, पहनावा सब गौण हो जाते हैं और मात्र मानव-धर्म ही सर्वोपरि होता है। यदि किसी मनुष्य में सहनशीलता की भावना नगण्य हो तो वह कभी भी सहायता हेतु अपना हाथ आगे नहीं बढ़ाएगा, *तू-तू-मैं-मैं* की बचकानी प्रवृत्ति उसके चरित्र को दर्शा देगी। ऐसे उस व्यक्ति के मन में शांति कदापि नहीं रहेगी।

किसी भी व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के नव-निर्माण, विकास और समृद्धि के लिए शान्ति का महामंत्र अति आवश्यक है। एक शांतिपूर्वक वातावरण में तभी साँस ली जा सकती है जब भाईचारे तथा सहनशीलता की भावना दृढ़ हो। यह दृष्टिगोचर होता है कि सहनशीलता के अभाव में मतभेद, झगड़े और बवाल जागृत होते हैं। राष्ट्र की शान्ति

एवं अमन के लिए लड़ाई-झगड़े, धर्मों का अपमान जैसे कुविचार हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं जिससे सामाजिक स्थिरता डावाँडोल हो सकती है। अतएव, सहनशीलता राष्ट्रीय अमन के लिए नितांत आवश्यक है।

हमारे देश की विभिन्न संस्कृतियाँ भिन्न-भिन्न सुगन्धित पुष्पों की प्रतीक हैं। इनको जब तक हम सहनशीलता के रेशमी धागे में पिरोकर एक मनोहर माला नहीं बनाएँगे, तब तक मधुमक्खियाँ रूपी पर्यटकों की संख्या में वृद्धि नहीं होगी। पर्यटक हमारे बहु-सांस्कृतिक देश में भिन्न-भिन्न संस्कृतियों से अवगत होने आते हैं। उन्हें तो *ची-फ़ेर* के क्रियोली गाने उतने ही भाते हैं जितना कि *सोना-नोयन* के भोजपुरी गमट। जब इन अलग-अलग संस्कृतियों को एक ही मंच पर प्रस्तुत किया जाता है तो सोने पर सुहागा हो जाता है। पर्यटक हमारी सहनशीलता तथा मिलनसार स्वभाव से प्रभावित होकर स्वतः हमारे देश की ओर आकृष्ट होते हैं। इस बहु-सांस्कृतिक परिवेश में हमारी सहनशीलता में *सर्वजन हिताय* की भावना निहित होती है। देश पर्यटकों की आवा-जाही से हमारे देश की अर्थव्यवस्था सुदृढ़ होगी।

सहनशीलता के पाठ का श्री गणेश अपने-अपने घरों से होता है। दूसरी संस्कृतियों के प्रति अभिभावकों के विचार जितने स्वस्थ एवं उदार होंगे, इस विषय पर उतने ही प्रबल उनके बच्चों का संस्कार होगा। उदाहरणतः एक मस्जिद, चर्च या मंदिर के निकट रहने से किसी और धर्म का कोई नुकसान या अपमान नहीं होता है। मैं स्वयं एक मस्जिद के निकट रहती हूँ और जब हमारे मुसलमान भाई ऊँचे स्वर में नमाज़ अदा करते हैं तो मुझे कोई परेशानी नहीं होती क्योंकि बचपन से ही मेरे माता-पिता ने मुझे यही शिक्षा दी है कि यह उनकी पूजा करने की शैली है तथा हमें उनका आदर करना चाहिए। अतः वे नमाज़ पढ़ते हैं तो मुझे भी विदित हो जाता है कि मुझे पूजा करने जाना है। बच्चों के चरित्र-निर्माण की प्रक्रिया के दौरान, सहनशीलता को उनमें कूट-कूट कर भरना हमारे वर्तमान और भविष्य के लिए अत्यंत लाभप्रद होगा। इसी के सहारे हम अपने समाज व राष्ट्र को संवारने में सक्षम होंगे। जब तक हम कट्टरता के विष का बहिष्कार नहीं करेंगे तब तक सहनशीलता के अमृत का पान करना कठिन होगा।

इस घोर कलियुग में मनुष्य को इस जीवन-रूपी संग्राम में विजय पाने के लिए जिस ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना है, वह है- संघ या संगठन। *संघ शक्ति कलियुगे* अर्थात् कलियुग में संघ व एकता में ही शक्ति है। जिस प्रकार पाँचों उँगलियों को एक साथ

लाने से मुट्ठी बनती है, उसी प्रकार समाज को संगठित बनाए रखने हेतु सभी संस्कृतियों का संगम अनिवार्य हैं। हमारे बहु-सांस्कृतिक समाज में प्राथमिक स्तर से ही अनेक भाषाओं की शिक्षा दी जाती है। फलतः बचपन से ही देश व समाज में भाषा के स्तर पर विविधता को समझने लगते हैं और इसके प्रति सहनशील होकर इसे स्वीकार करते हैं। सरकार भी इस सहनशीलता की भावना को बनाए रखने के लिए सभी धर्मों को समान अधिकार देती है। उदाहणार्थ सभी धर्मावलम्बियों का अपना-अपना संगठन है जिसके सरकार बराबर आर्थिक सहयोग प्रदान करती है ताकि वे पूर्ण रूप से भाषा के विकास हेतु कार्य कर सकें। अतः देश को सहनशीलता की भावना से ओत-प्रोत करने के लिए सरकार भी अपना दायित्व बख़ूबी निभा रही है।

अंततोगत्वा, यह कहना समीचीन होगा कि सहनशीलता के द्वारा ही मनुष्य बहु-सांस्कृतिक समाज की विभिन्न्ताओं में एकता ला सकेगा। जब तक मन में नकारात्मक विचारों को त्यागकर सकारात्मक भावनाओं को प्रश्रयता नहीं दी जाएगी तब तक इस शुद्ध भावना का संचार नहीं हो पाएगा। प्रत्येक स्तर पर सहनशीलता हमारे देश के लिए लाभप्रद सिद्ध होती है। इसके अभाव में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक स्थिरता पर प्रभाव पड़ सकता है।

सोलफेरिनो
वाक्वा

पुस्तकों का मूल्य रत्नों से भी
अधिक है क्योंकि पुस्तकें अंतःकरण को
उज्ज्वल करती हैं।

- महात्मा गांधी

लोक साहित्य में स्वतंत्रता संघर्ष

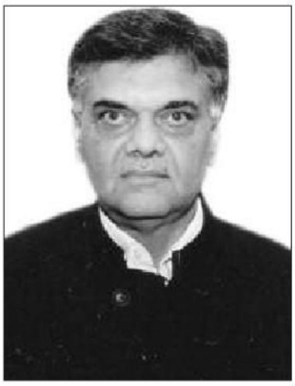

डॉ पूरनचंद टंडन

लोक-साहित्य सामान्य जनता के प्रतिरोधों या विचारों को प्रकट करने का एक सशक्त माध्यम है जिसमें जनता की भावनाओं और विचारों का अखिल तथा विशाल स्वरूप प्रकट होता है।

कहा जाए तो लोक साहित्य जनता के लिए जनता के ही द्वारा रचित साहित्य है जिसमें वह अपने जीवन की वास्तविकताओं का बखान करते हुए शोषण और दमन के खिलाफ़ आवाज़ उठाती है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने अपनी पुस्तक *'लोक साहित्य की भूमिका'* में लिखा है कि *"इसमें जिस समाज का चित्रण किया गया है वह स्वस्थ, सदाचारी एवं धर्मभीरु है; जिस नीति का प्रतिष्ठा की गई है वह कल्याण मार्ग की ओर ले जाने वाली है, वह मंगलमय पथ की प्रदर्शिका है; जिस धर्म का वर्णन किया गया है वह संसार में शान्ति तथा प्रेम का संदेश देता है; जिस आर्थिक संगठन का उल्लेख हुआ है वह पीड़ित तथा दलित मानवता के शोषण के ऊपर अवलम्बित नहीं है; जिस राजनीति का दिग्दर्शन कराया गया है वह दलीय संघर्ष और विषाक्त वातावरण से कोसों दूर है। धर्म, समाज और नीति का यही मनोरम चित्रण इस साहित्य की महत्ता में चार चांद लगा देता है।"*

इतिहास की प्रचुर सामग्री लोक-साहित्य में देखने को मिलती है। देश की आज़ादी के संघर्ष का जीता-जागता चित्र भी लोक-साहित्य में अंकित है। चाहे वह लोकगीत, लोकगाथाएँ, मुहावरे या लोकोक्तियाँ ही क्यों न हो? लोक-साहित्य जन से जुड़ा है जिसमें हमारे आस-पास घटित घटनाओं का लोकगीतों व लोकगाथाओं के माध्यम से जनता के सामने रखा जाता है जिसका संबंध इतिहास से तो है लेकिन वह संदर्भ रूप में नहीं मिल पाता है। यह सिर्फ़ जन-कवियों की वाणी में मुखरित हुआ है। यहाँ तक कि इस साहित्य के माध्यम से मानव-समाज की विकास यात्रा का भी ज्ञान होता है।

इस संदर्भ में डॉ. शंकर लाल यादव का कहना है, *"विश्व और मानव की रहस्यमयी पहेली को सुलझाने के लिए, उसके प्राचीनतम रूप की खोज के लिए और उसके यथार्थ स्वरूप को जानने के लिए जहाँ इतिहास के पृष्ठ मूक है, शिला-लेख और ताम्रपत्र मलिन हो गए हैं, वहाँ उस तमसाच्छन्न स्थिति में लोक-साहित्य ही दिशा-निर्देश करता है। आदिम मानव की आदिम वृत्तियों को जानने का सबसे सरल, प्रमाणिक एवं रोचक साधन लोक-साहित्य होता है।"* (हरियाणा प्रदेश का लोक-साहित्य, पृ.43) कहने का तात्पर्य यह है कि लोक-साहित्य इतिहास के धूमिल अंशों को सामने लाने का माध्यम है।

भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष आधुनिक भारत के इतिहास की एक प्रमुख घटना है, जिसके अनेकों चित्र लोक-साहित्य में मौजूद है। 1857 ई. की क्रांति से लेकर 1947 ई. तक के स्वतंत्रता संघर्ष को लोक-साहित्य के माध्यम से बखूबी जाना जा सकता है। स्वतंत्रता आन्दोलन की अनेक ऐसी अनुगूँजे सुनाई पड़ती हैं, जिनमें 'राष्ट्र' अथवा जन-नायकों के माध्यम से राष्ट्रीय मुक्ति की कोशिशें दिखाई पड़ती है। इस आन्दोलन की विभिन्न छवियाँ अलग-अलग लोकभाषाओं - अवधी, भोजपुरी, मैथिली, ब्रज, खड़ीबोली आदि के लोकगीतों व लोककथाओं में विद्यमान है। सन् 1857 की क्रान्ति से संबंधित अनेक कथाएँ पूरे देश में किसी न किसी रूप में व्याप्त है। लोकगीतों के माध्यम से स्वतंत्रता संघर्ष का व्यापक इतिहास मुखरित हुआ है। झांसी की रानी, तात्याँ टोपे, नाना साहब, गोखले, तिलक, लाला लाजपतराय, भगतसिंह, महात्मा गाँधी, चन्द्रशेखर आज़ाद, सुभाषचन्द्र बोस, जवाहरलाल नेहरू आदि के संघर्ष के अनेकानेक किस्से लोक-साहित्य में खूब ढले हैं।

जहाँ राष्ट्रीय आन्दोलन में हज़ारों वीर गोलियों के शिकार हो गए और हज़ारों युवक फाँसी पर झूल गए, जब ऐसे देश के कण-कण में राष्ट्रीयता की भावना अपने चरम पर हो तो वहाँ का लोक-साहित्य उससे दूर कैसे रह सकता था। अंग्रेज़ी शासन के जुल्म, उनकी लूट-खसोट, न्याय पद्धति, आर्थिक शोषण, सामाजिक भेद-भाव आदि का चित्रण लोक-साहित्य में भरा पड़ा है।

भोजपुरी की बात की जाए तो 1857 की क्रान्ति की व्यापक गूँज इसमें विद्यमान है। क्रान्ति के नायक बाबू कुँवरसिंह से संबंधित अनेक गीत व कहावतें भोजपुरी में प्रचलित हैं। इस नेता की छवि भोजपुरी जन-मानस में एक राष्ट्रवादी योद्धा के रूप में दर्ज है।

किन्तु भारतीय इतिहास में कुँवरसिंह की जो छवि निर्मित होती है वह लक्ष्मीबाई, नानासाहब और तात्याँ टोपे जैसे 1857 के नेताओं की तुलना में उतनी राष्ट्रवादी नहीं दिखाई पड़ती है जितनी की होनी चाहिए। जबकि उन पर रचित जन-कविताओं को देखते हुए पता चलता है कि सत्तावन की क्रान्ति में राष्ट्र को बचाने के लिए अन्य विद्रोही नेताओं की तरह बहादुरी और चतुराई से अंग्रेज़ों का मुकाबला किया था। ऐसे न जाने कितने ही जनान्दोलन व जनचरित्रों का नाम है जिनका उल्लेख लोक-साहित्य के अलावा कहीं नहीं मिलता है। ऐसा ही एक गीत भोजपुरी का है जिसमें अंग्रेज़ों के विरुद्ध संघर्ष का बिगुल फूँकते हुए बाबू कुँवरसिंह लक्ष्मणपुर से आगे बढ़े तो गाँव-गाँव की तरुणाई जाग उठी। बहोरनपुर, लच्छू टोला, बरसींघाट सारंगपुर, सुरेमनपुर,गउरा, करजा आदि भोजपुर जनपद के गाँव विद्रोह की लहर में बह गए-

जब बढ़ल कुँअरदल लक्ष्मनपुर से आगे
पथ गाँव-गाँव तरनाई जागल अनुरोग
जागल बहार बा गाँव बहोरनपुर में
लच्छू टोला, बारसींघा, सारंगपुर में
संग लागल सुरेमनपुर, गउरा अगराईल
धनबाग पहरपुर के उमंग में आईल
आते 'करजा' जे दादा के गुरुद्वारा
जहाँ समाधि कवि देव राम दुलारा।
(सर्वदेव तिवारी 'राकेश' - 'कालजयी कुँवरसिंह', पन्द्रहवाँ सर्ग, पृ.315)

भोजपुरी जन-साहित्य से पता चलता है कि कुँवरसिंह का संघर्ष अंग्रेज़ों से होता है जिसमें कुँवरसिंह की मानसिकता, जनता के बीच व्याप्त उनका सामाजिक आधार और समाज तथा राष्ट्र को बचाने की चिंताएँ दिखाई पड़ती है। एक प्रसंग है जिसमें यह बताया गया है कि कुँवरसिंह भी मंगल पाण्डे और पीर अली की फाँसी के बाद जनता की बेचैनी और असंतोष के साथ अपने को जोड़ लेते हैं तथा उनके मन में भी अंग्रेज़ों के प्रति विद्रोह की भावना पनपने लगती है। अपने मन में व्याप्त बेचैनी, असंतोष और विद्रोह की भावना को अपने छोटे भाई अमरसिंह के साथ बाँटते हैं। साथ ही इस गीत में उस ऐतिहासिक तथ्य यानी उस चर्बी वाले कारतूसों का भी उल्लेख है जिसके चलते मंगल पाण्डे को फाँसी दी गयी थी-

लिखी-लिखी पतिआ भेजले कुँवर सिंघ,
सुन हो अमरसिंह भाई।
चमवा के टोटवा दाँत से कटावे, छतरी धरम नसाई।
बात के खतिर बाबू कुँवर सिंह,
ले लै फिरंगिया से रार हो भाई।
(बद्रीनारायण, लोक संस्कृति में राष्ट्रवाद, पृ. 92)

कुँवरसिंह के राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन को लेकर, आम जनता कितनी उत्तेजित और उत्साहित थी इसका अन्दाज़ा भोजपुरी कविताओं के माध्यम से लगाया जा सकता है। मनोरंजन प्रसाद सिंह ने अपनी चर्चित कविता *'कुँवरसिंह'* में उस घटना का भी उल्लेख किया है जिसमें गंगा नदी पार करते हुए कुँवरसिंह के दाहिने हाथ में अंग्रेज़ों की गोली लगने के बाद, बाँयें हाथ से तलवार लेकर दाहिना हाथ काटकर उसे गंगा को भेंट कर देते हैं-

दुश्मन तट पर पहुँच गये, जब कुँअर सिंह करते थे पार,
गोली आकर लगी बाँह में, दायाँ हाथ हुआ बेकार।
हुई अपावन बाहुजान, बस काट दिया लेकर तलवार,
'ले गंगे, यह हाथ आज', तुझको ही देता हूँ उपहार।
वीर-भक्त का, वही जाह्नवी, को मानो नज़राना था,
सब कहते हैं कुँअर सिंह भी बड़ा वीर मर्दाना था। (पृ.183)

ऐसी घटनाओं का भोजपुरी समाज पर गहरा असर दिखाई पड़ता है तथा वहाँ के लोग इन गीतों का उल्लेख राष्ट्रवादी दृष्टि से करते हैं। स्वतंत्रता आन्दोलन में सुखदेव-भगत (1840-1899) जैसे लोक कवि का नाम भी किसी से छिपा नहीं है। इन्होंने सामाजिक समस्याओं जैसे दहेज प्रथा, नारी-समस्या, भ्रष्टाचार, विधवा-विवाह, छुआछूत, अनमेल-विवाह आदि पर अपनी आवाज़ उठाई। सुखदेव की भाषा भोजपुरी थी। वे अपनी इसी भाषा में लोकोक्तियाँ, उपदेश गीत, लोककथाएँ कहते थे। सन सत्तावन की क्रान्ति के समय कम उम्र के होने के बावजूद वे घूम-घूमकर अपने शिष्यों को इस आन्दोलन में भाग लेने को उत्साहित व प्रेरित करते थे। सुखदेव-भगत एक पिछड़ी जाति से जुड़े हुए थे। इनका जीवन स्तर सामान्य किसान से भी निम्न था। इसलिए इनको अपने जीवन में कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ा। फिर भी इन्होंने अपने उपदेश व गीतों के माध्यम से औपनिवेशिक राज के स्थानीय प्रशासन के

भ्रष्टाचार एवं दमन के प्रति अनन्त प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की है। वे सरकार के कर्मचारियों पर व्यंग्य किया करते थे। गाँव की तत्कालीन स्थिति को समझने के लिए उनकी एक कहावत है -

हमनी गरीबवन को चूस के
बाप बनल.....5.....मूस के

(ओरल हिस्ट्री कैसेट नं 6)

अर्थात्, हम गरीबों को चूसकर इतने मोटे हुए हैं कि मूस के पिता के समान दिख रहे हैं। इस प्रकार सुखदेव-भगत ने अपने गीतों व कहावतों में स्थानीय तंत्र के प्रति खीझ और प्रतिरोध की भावना व्यक्त की है।

राष्ट्रीय चेतना को महेश नारायण की खड़ीबोली में लिखित कविता, लेख व साहित्यिक रचनाओं का योगदान भी प्रमुख है, जिसमें उन्होंने अंग्रेज़ी शासन की दमनकारी नीतियों के खिलाफ़ जनता के अन्दर राष्ट्रीयता और भारतीयता का अलख जगाना शुरू किया। महेश नारायण ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कविता लेखन संबंधी ब्रजभाषा की अवधारणा के खिलाफ़ जाकर, खड़ीबोली हिन्दी में काव्य लेखन शुरू किया तथा 1857 ई. में 'बिहार बंधु' में 'स्वप्न' कविता का प्रकाशन किया। यह एक महत्त्वपूर्ण रचना है, जो 1857 के बाद की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थितियों, घटनाओं और ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूण संदर्भो की ओर संकेत करते हुए इतिहास और कविता के बीच एक द्वंद्वात्मक रिश्ता कायम करती है। यह कविता सामाजिक धार्मिक रूढ़ियों एवं मान्यताओं से टकराते हुए जनता की सुरक्षा, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और ब्रिटिश साम्राज्यवाद से राष्ट्र की मुक्ति की कामना जैसे प्रमुख सवालों को उठाती है। कविता के प्रारम्भ और अन्त में भारतीय समाज में स्त्रियों के शोषण, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, पुरुष समाज का वर्चस्व आदि का उल्लेख भी है। 1857 के बाद लागू ब्रिटिश आर्म्स एक्ट का भी विरोध इस कविता में है-

रऐयता तो हयाँ रखी होगी अपना हथियार
हम लोग के पास वाँ नहीं है एक तलवार
है हम लोगों को उनकी यह भक्ति
कि दे के सब अस्त्र स्वाधीनता ही गवाई
(सन्दर्भः भारतीय राष्ट्रवाद का नीम्नवर्गीय प्रसंग, रश्मि चौधरी, पृ.86)

इसके अलावा यह कविता आर्थिक शोषण के खिलाफ़ प्रतिरोध, राष्ट्र की दासता से मुक्ति की कामना तथा भारतीय सामाजिक व्यवस्था में मौजूद अनमेल विवाह और स्त्रियों की ज़िंदगी के सवाल के प्रमुखता के साथ उठाती है। इन सभी सवालों को कवि महेश नारायण स्वाधीनता से जोड़कर एक ऐसे राष्ट्र की कल्पना करते हैं, जिसमें सब कुछ स्वदेशी हो, मज़बूत व्यवस्था हो, खुली सामाजिक ज़िन्दगी और प्राकृतिक सुन्दरता हो। महेश नारायण जैसा कार्य भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', रामनरेश त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचंद और यशपाल जैसे साहित्यकार करते हैं, जो अंग्रेज़ी शासन के प्रति विरोध रखते हुए भारतीय समाज में व्याप्त स्त्रियों, मध्यमवर्गीय लोगों, दलितों, किसानों, मज़दूरों आदि की समस्याओं को राष्ट्रीय मुक्ति के सवाल से जोड़कर भारतीय राष्ट्रवाद का एक नया इतिहास रचते हैं।

स्वतंत्रता आन्दोलन में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी बंगला में रचित अपनी कविताओं के द्वारा अंग्रेज़ों की नीतियों का पुरजोर विरोध किया है। उनके द्वारा बंग-भंग के समय लिखे गए गीतों को राष्ट्रवादी बुद्धिजीवियों सहित आम जनता भी उत्साहपूर्वक गाती है। यद्यपि भोजपुरी में 'बंग-भंग' व 'स्वदेशी-आन्दोलन' से संबंधित कविताएँ ज़रूर है जो राष्ट्रीय चेतना व स्वदेशी आन्दोलन को एक नया आयाम प्रदान करती है। इनमें अधिराम शर्मा, प्रणयेश शर्मा व पं. माधव शुक्ल की रचनाओं को भी कभी नहीं भुलाया जा सकता है। माधव शुक्ल की अधिकांश कविताएँ तो ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रतिबंधित कर दी गई थी। इन्होंने 'वीर बंधु', 'दासता', 'धन्य आर्य कुल वीर लाजपत नरवर श्रीयुत' जैसे अनेक देशभक्ति परक कविताओं की रचना की। इनमें से ज्यादातर कविताओं का प्रकाशन बालकृष्ण भट्ट द्वारा संपादित पत्रिका 'हिन्दी प्रदीप' में हुआ, जो राष्ट्रवादी बुद्धिजीवियों व लेखकों के बीच लोकप्रीय पत्रिका थी।

'हिन्दी प्रदीप' में प्रकाशित माधव शुक्ल की कविता का एक उदाहरण है -

वीर बन्धु है कौन देश में कौन बुद्धि बलशाली है,
यदि विचार देखो तो भाई आर्य पुरूष बंगाली है।
कौन स्वदेशी सेवक सच्चे कौन सुदृढ़ प्रणपालक है,
बुध जनो! यह कहना होगा, बंग-देश के बालक है।।
(नरेशचन्द्र चतुर्वेदी. संपादकः चर्चित राष्ट्रीय गीत, भाग 1 -पृ.83)

स्पष्टतः ये कविताएँ स्वतंत्रता आन्दोलन की उस चेतना की ओर इशारा है जो बंग-भंग के कारण उत्पन्न होती है। इन कविताओं में राष्ट्रवादी नेताओं का भी चित्रण किया गया है।

जब कवि इन राष्ट्रवादी नेताओं का उल्लेख अपनी रचनाओं या गीतों में करते हैं तो पुलिस उन राष्ट्रवादी नेताओं को पकड़ लेती है और जेल में डाल देती है, तब जनता दुःखी हो जाती है और उसे लगने लगता है कि अब 'स्वराज' नहीं मिलेगा-

अब ना मिलिहें सोराज।। टेक।।
सउकत अली, लाला लाजपति,
अवरु सिआरन दास।। टेक।।
ई सब बीर पड़े जेलखनवाँ,
अब ना मिलिहें सोराज।।टेक।।

(कर्मेन्दु शिशिरः भोजपुरी होरी गीत, भाग-1,पृ.83)

भोजपुरी में रचित इस कविता में बंग-भंग और उसके बाद की तमाम घटनाओं का वर्णन है जिसमें सारे बड़े राष्ट्रवादी नेताओं को पुलिस पकड़ लेती है और जेलों में डाल देती है तथा तरह-तरह की सजा सुना रही है।

अंग्रेज़ों की शोषण के कारण जनता भूख से बेहाल है, किसानों की हालत खराब हो गयी है। अपनी बदहाली की स्थिति व दुःख को जनता बार-बार अभिव्यक्त करती है। इस गीत के माध्यम से जनता की मार्मिक स्थिति को समझा जा सकता है -

हो गइली कंगाल, हो विदेसी, तारे रजवा में।
सोने की थारी, जहाँ जेवना, जेवत रहनी,
कठवा के डोकिया के भइली मुहाल।
भारत के लोग आजु, दाना बिनु, तरसे भइया,
लन्दन के कुतवा उड़ावे मजा माल,
हो विदेशी, तारे रजवा में।

(श्रीधर मिश्रः भोजपुरी लोक साहित्यः सांस्कृतिक अध्ययन, पृ.204-205)

जब राष्ट्रीय आन्दोलन में सरकार तिलक, लाला लाजपतराय, जैसे राष्ट्रवादी नेताओं को पकड़कर जेल में डाल देती है तो उसका गहरा असर जनता पर पड़ता है। जनता अंग्रेज़ सरकार के विरुद्ध उग्र रुख अपनाती है, हड़तालें होती है, जुलूस निकलते हैं

जिसमें आम जनता के साथ-साथ कई स्वतंत्रता सेनानी भी आहत होते हैं। बलभद्र प्रसाद गुप्त विशारद 'रसिक' की 'खून के छींटें' नामक एक रचना है जिसे ब्रिटिश राज में प्रतिबंधित कर दिया था। इस कविता में तिलक का जेल जाना, फिर जेल से बाहर आकर 'होमरुल लीग' का गठन करना और 'स्वराज्य' की माँग को तेज करना आदि का उल्लेख किया गया है -

पराधीनता का पाप, दाप, पश्चाताप जब,
भारत-निवासियों में भलीभाँति छाया था।
देखकर पशु-बल का प्रबल उन्माद,
जब देश-सेवकों का दल, अकुलाया था।
नीति का महत्त्व जब बम बरसाने में था,
करुण कथा को अत्याचार ने छिपाया था।
'रसिक' फिरंगियों का गर्व हरने को तब
शांत क्रांतिकारी श्री तिलक देव आया था।
(रूस्तम राय, संपादकः प्रतिबंधित हिन्दी साहित्य, भाग 2 -पृ.42)

स्वतंत्रता आन्दोलन में गांधी जी का आगमन एक बड़ी घटना के रूप में देखा जाता है। अफ़्रीका से लौटने के बाद गांधी जी ने स्वाधीनता आन्दोलन की डोर अपने हाथों में ले लिया। साबरमती आश्रम की स्थापना, चम्पारण सत्याग्रह, रॉलेट एक्त के खिलाफ़ सत्याग्रह एवं देशव्यापी हड़ताल, असहयोग आन्दोलन आदि घटनाओं ने गांधी को जनता के बीच लोकप्रिय बना दिया। उस समय जनता के मानस में सिर्फ़ एक ही छवि उभर रही थी गांधी जी की। तभी तो निर्धनराम जैसे जन-कवि ने कहा है-

गांधी में गुन बहुत है; सदा लीजै नाम
दीन दुख दरिद्र भगावै और बनावै काम

आगे फिर वो गांधी का चित्रात्मक रूप प्रस्तुत करते हैं -

हाथ में लाठी साहे कण्ठ में पुकार।
हो मेरे गांधी कैसे मैं भव करूँगा पार।।

इन गीतों में एक पीड़ित मन की कथा है। इसी समय कवि कैलाश भी अपनी व्यंग्यात्मक एवं विनोदपूर्ण तुकबन्दी के द्वारा जनमास में राष्ट्रीयता की भावना का

प्रसार कर रहे थे। कवि कैलाश ने कुछ समय अंग्रेज़ी सेना में भी नौकरी की थी लेकिन कुछ समय में ही भारतीय सैनिकों के प्रति अंग्रेज़ अफ़सरों के व्यवहार से तंग आकर एवं दमनतन्त्र की सच्चाई समझकर सेना से भाग आए। उसके पश्चात वे राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल हो गये। कवि कैलाश *1921* के बाद विभिन्न तरह से स्थानीय राष्ट्रवादी संघर्ष में सक्रीय भूमिका प्रदान करते रहे। इसके कारण कवि को काफ़ी यातनाएँ भी झेलनी पड़ी जिसमें ६ः मास का कारावास प्रमुख है। कवि की इन पंक्तियों में अंग्रेज़ी शासन के प्रति तीव्र आक्रोश व्यक्त है-

जे खाला घीव मलीदा, ओकर कान बहिराइल बा।
डंडा उठावा चल फिरंगियन के भगावे के दिन आईलबा।।
कहे कवि कैलाश, उठाव डंडा।
तबहिं फूटी अंग्रेज़वन के भंडा।।

इसके अलावा कवि कैलाश ने जमींदार विरोधी तथा किसान के हितों की सजग चेतना से युक्त लोक कविता भी की है।

1857 की क्रान्ति में सभी संगठन एकजुट होकर सामने आए, लेकिन फिर भी सफलता नहीं मिली। उसके बाद महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व किया, जिसका उद्देश्य स्वराज तक ही सीमित नहीं था, बल्कि देश की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक प्रगति की ओर उन्मुख था। असहयोग आन्दोलन के समय का पंजाबी भाषा का नरेन्द्रधीर का एक लोकगीत है, जिसमें लोक ने अंग्रेज़ी शासन के न्यायपद्धति की नग्न तस्वीर प्रस्तुत करते हुए आलोचना की है -

नाँ तौ मेरी लई उगाही, नाँ सब बात पछाणी।
कन्नों बोली दिसे अदालत, अक्खों बी है काणी।
सच्चे फैसले किवें करे आहे, जिहने बड्डी होवे खानी।
नर काँच पये जिन्दड़ी, मिले न तिहाये नूँ पाणी।
(नरेन्द्रधीर, हँसता गाता पंजाब पृ.94-95)

अदालत ने मेरी गवाही भी पूर्ण रूप से नहीं ली अर्थात् मुझे अपना पक्ष रखने का पूरा अवसर ही नहीं दिया। ना ही अदालत ने मेरी सभी बातों की पहचान की अर्थात् प्रमाण लिये। मुझे ऐसा लगता है कि अदालत कानों से ही बहरी है। वह मुझे आँखों

से भी कानी प्रतीत होती है। वह अपने फैसले सच्चे किस प्रकार करे जब वह कटी-कटाई फसल ही खाने की आदि हो चुकी है अर्थात निकम्मी हो चुकी है। ऐसे शासन में हमारा जीवन भी नारकीय हो चुका है। यहाँ तो प्यासे को पानी भी मिलना मुश्किल है। देखा जाए तो इस गीत में रॉलेट एक्ट के बारे में बताया गया है।

1919 के बाद खड़ीबोली हिन्दी और भोजपुरी के लोक साहित्य में गांधी के असहयोग और अहिंसा आन्दोलन की जो जन-छवि निर्मित होती है, इसमें उनके 'सक्रिय प्रतिरोध' का यथार्थ चित्रण दिखाई पड़ता है। खड़ी बोली के अज्ञात जन कवि ने गांधी के प्रतिरोध को कुछ इस तरह व्यक्त किया है -

साबरमती से चला संत, एक अहिंसाधारी
जगत में सन्नाटा छाया घूमी पृथ्वी सारी
काँपे कमरिया हाथ में लाठी एक लँगोटाधारी
चला नमक कानून तोड़ने स्वराज का अधिकारी
चला दुखों का दुर्ग तोड़ने, चालीस कोटि बंध तोड़ने
जेल को जिसने तीर्थ बनाया आजादी है प्यारी
साबरमती से चला संत, एक अहिंसाधारी।
दुर्बल देह प्रबल मन वाला सच्चा सेवाधारी
जनसेवा को जीवन समझा जिसे एकता प्यारी
घर में जा जा अलख जगाया आजादी का पाठ पढ़ाया
खादीधारी हमें बनाया भारत तेरा पुजारी।
(विश्वमित्र उपाध्याय, लोकगीतों में क्रांतिकारी चेतना पृ.118-119)

देखा जाए तो इस गीत में डांडी यात्रा *(1930)* का ऐतिहासिक संदर्भ है। साथ ही गांधी जी के व्यक्तित्व का भी उल्लेख इसमें किया गया है। पूर्णतः कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता आंदोलन में गांधी जी का अहम स्थान है।

लोक साहित्य की बात करें तो भोजपुरी भाषा के ही प्रमुख कलाकार भिखारी ठाकुर के योगदान को नहीं भुलाया जा सकता है। इन्होंने लोक काव्यात्मक शैली में अनेक नाटक लिखे हैं *जिनमें बिदेसिया, भाई विरोध, बेटी वियोग, कलियुग प्रेम प्रमुख हैं।* इनके नाटकों में राष्ट्रीय चेतना कूट-कूट कर भरी है। साथ ही भारतीय ग्रामीण जीवन

की र्दनाक गथा, पुलिस दमन, सामाजिक विसंगतियाँ, अंग्रेज़ी औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध उपालंभ को भी इन्होंने अपनी रचनाओं में लक्षित किया है।

स्पष्टतः भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष की अनेक छवियाँ लोक-साहित्य में मौजूद है। चाहे वह 1857 की क्रांति, स्वदेशी आन्दोलन, रॉलेट एक्ट, जलियाँवाला बाग हत्याकांड, असहयोग आन्दोलन, साइमन कमीशन, नमक सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, भारत छोड़ो आदि है। अतः हम देखते हैं कि स्वतंत्रता संघर्ष की ऐसी अनेक घटनाएँ व उनसे जुड़े लोग हैं जिनके संबंध में इतिहास भी मौन है। उनका चित्रण केवल हमें सीधी और सरल भाषा में लोक-साहित्य में ही देखने को मिलता है।

(१)

जिस देश को अपनी भाषा और साहित्य
के गौरव का अनुभव नहीं है, वह उन्नत
नहीं हो सकता ।

(२)

हिन्दी चिरकाल से ऐसी भाषा रही है
जिसने मात्र विदेशी होने के कारण
किसी शब्द का बहिष्कार नहीं किया ।

- डॉ० राजेन्द्र प्रसाद

साहित्य और सिनेमाः कितने दूर, कितने पास

- डॉ उमेश सिंह

भारत में फ़िल्म उद्योग ने अपने सौ वर्ष पूरे कर लिए हैं। इस दौरान भारत में अब तक बॉलीवुड और क्षेत्रीय भाषाओं में साहित्यिक कृतियों पर निर्देशकों द्वारा अनेक फ़िल्मों का निर्माण किया जा चुका है और भविष्य में भी निर्माण किया जाता रहेगा। परंतु इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है कि विदेशों में साहित्यिक कृतियों पर जिस जुझारूपन के साथ फ़िल्मों
का निर्माण किया जाता है भारत में उनकी तुलना में बहुत अधिक साहित्यिक कृतियों पर फ़िल्में नहीं बन पाई हैं। इसके बावजूद भी भारत विश्व का सर्वाधिक फिल्म उत्पादक देश है। इसमें हिन्दी फ़िल्मों के साथ क्षेत्रीय भाषाओं में बनी फ़िल्में भी शामिल हैं।

भारत में फिल्मी दुनिया का सफ़र विदेश में बनी पहली फ़िल्म के प्रदर्शन के बाद मूक फ़िल्मों से बोलती हुई फ़िल्मों के दौर से होता हुआ आज पूरा एक शतक पूरा कर चुका है।

भारतीय सिने इतिहास की महत्वपूर्ण तिथियों में 7 जुलाई 1896 का दिन बहुत ही महत्वपूर्ण है जब मुंबई के वाटसन होटल में लुमिएर बंधुओं की फ़िल्म दिखाई गई थी। उस दिन भारत में फ़िल्म विधा का जादू पर्दे पर देखने को मिला था।

दादा साहब फाल्के द्वारा 3 मई 1913 को राजा हरिश्चंद्र की पहली मूक फिल्म बनाई गई। यह फिल्म 21 अप्रैल 1913 को रिलीज़ हुई। इस तरह साहित्यिक फ़िल्मों की शुरुआत साहित्यिक कृति से ही हुई जो एक लघु कथा पर आधारित फ़िल्म थी।

मुंबई के मैजिस्टिक सिनेमा हॉल में 14 मार्च 1931 को भारत की पहली बोलती 'आलमआरा' फिल्म रिलीज़ हुई थी। इतिहास में एंपीरियल फ़िल्म कंपनी की

'आलमआरा' को पहली वास्तविक हिंदी फिल्म कहलाने का गौरव प्राप्त हुआ। साहित्य और सिनेमा कितने दूर और कितने पास हैं इस शोध पत्र में इस बात को स्पष्ट करने के लिए "देवदास", "उमराव जान", "चित्रलेखा", और "सद्गति" जैसी कुछ महत्वपूर्ण साहित्यिक कृतियों पर बनी फ़िल्मों का ज़िक्र करना अति आवश्यक है। इनमें से सर्वप्रथम शरद चन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यास "देवदास" पर बनी फ़िल्में अपने समय की बहुत ही महत्वपूर्ण थी और यह फ़िल्म सफलता के शिखर को छू चुकी है। "देवदास" उपन्यास पर अब तक भारत के विभिन्न प्रान्तों में हिन्दी के साथ-साथ कई क्षेत्रीय भाषाओं में लगभग चौदह फिल्में बनाई जा चुकी हैं। इस साहित्यिक कृति पर बनी फिल्मों को दर्शकों द्वारा देखने और दूसरी भाषाओं में फ़िल्म निर्देशकों द्वारा नई फ़िल्म बनाने से अभी तक मन नहीं भर पाया है। इससे "देवदास" उपन्यास जैसी साहित्यिक कृति पर बनी फ़िल्मों के महत्व को समझा जा सकता है। इसी तरह मिर्ज़ा हादी रुसवा के उर्दू उपन्यास "उमराव जान", भगवतीचरण बर्मा के उपन्यास "चित्रलेखा" पर सफल और महत्वपूर्ण फ़िल्म बन चुकी हैं। प्रेमचन्द के उपन्यास "गोदान" पर त्रिलोचन जेटली ने 1963 में "गोदान" फिल्म बनाई थी। प्रेमचन्द की कहानी पर ही सत्यजीत द्वारा "शतरंज के खिलाड़ी" और "सद्गति" आदि फ़िल्में बनाई जा चुकी हैं। "राजनीगंधा", "हम आपके हैं कौन", मन्नू भंडारी की कहानी "यही सच है", केशव प्रसाद मिश्र के उपन्यास "कोहबर की शर्त पर" , "हम आपके हैं कौन", चन्द्रधर शर्मा गुलेरी कहानी "उसने कहा था" पर फ़िल्म "उसने कहा था", राजेन्द्र यादव के उपन्यास "सारा आकाश", पर "सारा आकाश", धर्मवीर भारती के उपन्यास "सूरज का सातवाँ घोड़ा" पर "सूरज का सातवाँ घोड़ा", फरीश्वरनाथ रेणु "तीसरी कसम" उर्फ मारे गए गुल्फ़ाम पर फिल्म "तीसरी कसम" आदि फिल्मों को महत्वपूर्ण फिल्मों में गिना जाता है। इतना ही नहीं "विराज बहू", "परिणीता" आदि फिल्में भी इसके जीवंत प्रमाण हैं।

इन सब प्रमाणों के बावजूद हम साहित्य और सिनेमा को दो विपरीत धाराएँ कहें तो अतिशयोक्ति न होगी क्योंकि इन दोनों का मूल स्वभाव कुछ हद तक अलग-अलग होता है। जिस बात को सिनेमा में कैमरा द्वारा कुछ समय में फ़िल्म की झलक में दिखा सकते हैं, उसे साहित्य में बताने के लिए कई पृष्ठ लिखने पड़ते हैं। यही अलगाव किसी साहित्यिक कृति के फ़िल्म रूपान्तरण में व्यवधान उत्पन्न करता है। साहित्यिक कृति के रूप में उपन्यास अथवा कहानी को पटकथा के ढांचे में परिवर्तित करते समय बहुत बड़ी समस्या पटकथाकार के सामने आती है। इस समस्या के निजात पाने के लिए निर्देशक को साहित्य में कुछ जोड़ना अथवा घटाना पड़ता है। फ़िल्मांतरण के दौरान साहित्य में आए इन बदलावों से साहित्य के अध्येता विचलित होने लगते हैं।

साहित्य के अध्येता के विचलित होने का प्रमुख कारण साहित्य के प्रत्येक पृष्ठ और प्रत्येक लाइन के साथ-साथ चलना कहा जा सकता है। साहित्य के अध्येता के पास समय और रचना को कई खंडों में पढ़ने की स्वतंत्रता होती है जबकि फ़िल्म निर्देशक के पास दो से लेकर तीन घंटे का समय ही होता है। उसी समय में फ़िल्म को बुलंदियों तक पहुँचाकर समाप्त करना होता है। इसके उपरान्त जो तथ्य उभरकर आते हैं उन्हें इस प्रकार देख सकते हैं -

- सिनेमा और साहित्य के बीच विधागत असमानता के कारण साहित्यिक रचनाओं के फ़िल्मांतरण का कार्य जोखिम भरा कहा जा सकता है।
- सिनेमा एक ऐसी कला है जो कई कलाओं के मेल से बनती है जबकि साहित्य में ऐसी कोई समस्या नहीं होती है।
- निर्देशक के सामने रचना के कथ्य अथवा उसकी मूल संवेदना को ठीक उसी रूप में बचाए रखने की बहुत बड़ी चुनौती है।

साहित्य पर फ़िल्म निर्माण के संबंध में फ़िल्म निर्देशकों के विचार भी इसी तथ्य को उजागर करते हैं। सत्यजीत रे मानते हैं कि किसी रचना पर फ़िल्म बनाना उस रचना का पुनर्सृजन है अर्थात कोई भी साहित्यकार साहित्य पर फ़िल्म बनाते समय उसमें अपने विवेक से छूट ले सकता है। दूसरी ओर बासु चटर्जी की दृष्टि ठीक पहली दृष्टि के बिलकुल विपरीत है। वे कहते हैं कि पटकथा लिखने में मात्र उतनी ही स्वतन्त्रता लेता हूँ जितनी माध्यम से लेनी आवश्यक होती है। इस प्रकार साहित्य पर सिनेमा के संबंध में दो दृष्टियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। इन सब बातों के होते हुए भी हमारे पास साहित्यिक कृतियों पर बनी फिल्मों के अनेक उदाहरण हैं।

मुंशी प्रेमचन्द की कहानी सद्‌गति फिल्म : दुखी (ओमपुरी) और उसकी झुरिया (स्मिता पाटिल) अछूत हैं। दुखी को स्थानीय ब्राह्मण पुरोहित की मदद की ज़रूरत है। उसे अपनी बेटी की शादी का प्रबंध करना है। वह पुरोहित के पास जाता है। पुरोहित उसे बहुत से बेकार के काम करवाता है। वह उससे एक मोटे पेड़ के तने को कुल्हाड़ी से फाड़ने का आदेश देता है। दुखी बीमार, कमज़ोर और सुबह से भूखा होता है। वह इस तरह के निरंतर परिश्रम को बर्दाश्त नहीं कर पाता और गिर पड़ता है। उसी समय उसकी मृत्यु हो जाती है। पुरोहित के सामने समस्या उत्पन्न होती है कि वह उस लाश का क्या करे? अछूत को छूने से उसका धर्म भ्रष्ट हो जाएगा। वह तरकीब निकलता है। वह एक रस्सी को लेकर दुखी के पैर में बांध देता है और उसे पकड़कर

लाश को खींचकर एक कूड़े के ढेर पर फेंक देता है जहाँ वह जानवर और पक्षियों का भोजन बनता है।

सद्गति फिल्म? 1981, 25 अप्रैल 1982 दूरदर्शन का रंगीन प्रसारण

अभिनेता ओमपुरी कहानी के नायक दुखी, अभिनेत्री स्मिता पाटिल पत्नी झुरिया और पुरोहित की भूमिका में मोहन अगासे ने सशक्त अभिनय के द्वारा फ़िल्म को प्रभावशाली बनाया है। फ़िल्म में संगीत का उपयोग सीमित है पार्श्व संगीत का प्रयोग त्रासदी को उभरकर लाने के लिए किया गया है।

"सद्गति" दलित जीवन संदर्भों पर लिखी गई मुंशी प्रेमचंद की बहुचर्चित कहानी है। इस पर सत्यजीत रे ने फिल्म बनाई है। समाज व्यवस्था में दलितों के लिए रचे गए जिस नरक को रचनेवालों में पुरोहित हों, ठाकुर हों अथवा वैश्य हों आदि के इसमें क्रूर और भयानक चेहरे ही दिखाई देते हैं। इतना पाशविक रूप सद्गति कहानी और फिल्म के अतिरिक्त समान्यता और कहीं उजागर नहीं हुआ है। इस कहानी के शीर्षक में कोई छेड़छाड़ नहीं की गई है।

सद्गति में सत्यजीत रे ने लगभग बिना किसी परिवर्तन के ही फ़िल्म को रूप दे दिया है। सच मानो तो सत्यजित रे ने पूरी निष्ठा के साथ कहानी के एक-एक वाक्य का अनुसरण किया है। सद्गति एक सशक्त फ़िल्म है जो जाति-प्रथा, क्रूरता और गरीबी सभी को एक साथ सीधी स्पष्ट शैली में प्रस्तुत करती है। सद्गति एक विचलित कर देने वाली फ़िल्म है। सद्गति फ़िल्म की कहानी दुखभरी कहानी है।

जब हम सद्गति कहानी की ओर देखते हैं तो मुंशी प्रेमचंद इस कहानी में किसकी सद्गति की ओर इशारा कर रहे हैं। दुखी चमार जिसकी सद्गति में ब्राह्मण के दरवाजे पर उसकी आज्ञा और अनुशासन में प्राण छोड़े उसे रस्सी की फांस मिली, भले ही उसे कंधा न मिला अथवा जिसने अपने धर्म का बखूबी निर्वाह किया जो धर्मशास्त्रों में उसके लिए निर्धारित है। यह फ़िल्म हमारे मन और मस्तिष्क पर कई प्रश्न छोड़ जाती है।

अंत में कहा जा सकता है कि साहित्य और सिनेमा में बुनियादी अंतर होने के बावजूद भारतीय निर्देशकों द्वारा बनाई गई फ़िल्मों ने भारत के सामाजिक , राजनीतिक और सांस्कृतिक सरोकारों को विश्व के सम्मुख प्रस्तुत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हिंदी फ़िल्मों में मनोरंजन के साथ-साथ भारतीय जीवन के विविध पहलुओं को, बदलते परिवेश में, चित्रित करने में सफलता हासिल की है। हिंदी फिल्मों की सबसे बड़ी

विशेषता जीवन में व्याप्त हर तरह की संवेदना को दर्शाना रहा है। पचास का दशक हिंदी फ़िल्मों का स्वर्ण युग है। इसका सबसे बड़ा कारण फ़िल्मकारों की सामाजिक प्रतिब्धता और सामाजिक समस्याओं के प्रति एक ईमानदार संवेदनशीलता और उन समस्याओं का समाधान तलाशने की एक ललक है, जिसे वे दर्शकों में जागरुकता पैदा कर हासिल करना चाहते थे।

ई.सी.सी.आर चेयर
हिन्दी विभाग
महात्मा गांधी संस्थान
मोका, मॉरीशस
umesh_jnu@rediffmail.com

संदर्भः

१. फ़िल्म "सद्गति" 1981, निर्देशक सत्यजीत रे।
२. फ़िल्म "देवदास" पी.सी .बरुआ, 1936 2002
३. फ़िल्म "देवदास" 1955, निर्देशक विमल रॉय।
४. फ़िल्म "देवदास" 2002, निर्देशक संजय लीला भंसाली।
५. मुंशी प्रेमचंद, कहानी "सद्गति" सं आलोक राय, मुश्ताक अली-प्रेमचंद की बीस उर्दू-हिंदी कहानियों का समांतर पाठ, हंस प्रकाशन, 18 न्याय मार्ग, इलाहाबाद पहला संस्करण 2002
६. शरदचंद्र चट्टोपाध्याय, उपन्यास "देवदास" सुबोध पब्लिकेशन्स, 2/3 बी, अंसारी रोड, नई दिल्ली - 110032
७. धीरेन्द्र कुमार, साहित्य पर बना सिनेमा, लता साहित्य सदन, लोनी बोर्डर, गाजियाबाद- 201102
८. विनोद भारद्वाज, समय और सिनेमा, प्रवीण प्रकाशन महरौली, नई दिल्ली, संस्करण 1994

मैं दुनिया की सभी भाषाओं की इज़्ज़त
करता हूँ पर मेरे देश में हिन्दी की
इज़्ज़त न हो, यह मैं सह नहीं सकता।

- आचार्य विनोबा भावे

मॉरीशस में हाइकु का प्रचलन

- डॉ इन्द्रदेव भोला इन्द्रनाथ

मॉरीशस के कई पाठक 'हाइकु' शब्द सुनकर दंग रह जाते है क्योंकि मॉरीशस में हाइकु का अभी प्रचलन नहीं हुआ है। कई पाठक खुद मुझसे पूछते हैं कि 'हाइकु' है क्या? खुद मैं नहीं जानता था कि आखिर हाइकु है क्या? मॉरीशस में ही नहीं भारत के बाहर के और भी कई देश हैं जहाँ हिन्दी की विविध विधाओं में साहित्य-सृजन हो रहा है पर हाइकु का नहीं। भारत में अनेक हाइकुकार हुए हैं जिनके लेखन से वहाँ हाइकु साहित्य समृद्ध हो रहा है।

मैंने भारत की पत्रिकाओं जैसे 'सम्यक' में कुछ हाइकु पढ़े थे। यह देखकर कि हाइकु अति छोटी कविता है तो मेरा कवि हृदय होने से मैं हाइकु लेखन की ओर अग्रसर हुआ और कतिपय हाइकु लिखने का प्रयास किया। पर मैं जानता था कि साहित्य की हरेक विधा के लेखन के उसके तत्व, शिल्प, कला व शैली होती है। अतएव हाइकु लेखन के प्रतिभागों से मैं अवगत होने के लिए उद्यत हुआ। मैंने होशंगाबाद (एम.पी) भारत में प्रकाशित 'सम्यक' के संपादक श्री मदन मोहन उपेन्द्र जो एक हाइकुकार हैं, उनसे सम्पर्क किया। मैंने हाइकु लेखन में मार्गदर्शन करने की उनसे माँग की। साथ-साथ मेरे पत्र में मेरे लिखे कतिपय हाइकु संलग्न थे। मैंने उनको अपने भेजे गए हाइकुओं पर विचार देने का आग्रह किया था। पत्रोत्तर में उन्होंने कहा कि जो हाइकु मैंने भेजे हैं उसमें विचार प्रभावशाली हैं पर ये हाइकु शिल्प के अनुरूप नहीं है। श्री मदन मोहन उपेन्द्र जी एक उदार व्यक्ति हैं और उन्होंने अपनी उदारता दिखाते हुए अपना हाइकु संग्रह 'चिड़िया चीर गई आकाश' और 'हाइकु-भारती' पुस्तिका जिस में हाइकु का संक्षिप्त इतिहास है तथा हाइकु लेखन का विविध विधान निदेर्शित है, मेरे पास भेजे। मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा और हाइकु लेखन के प्रतिमान से अवगत हुआ।

हाइकु मूलतः जापानी कविता का एक काव्य रूप है। यह एक मुक्तक काव्य का प्रकार है। जिसकी तीन शैलियाँ मिलती हैं - तांका, सोदोका और चोका। तांका में ५ पंक्तियाँ होती है और अक्षरों की संख्या कम से कम 5,7,5,7, 7 होती है। सोदोको में ७ पंक्यिाँ होती है और पंक्तियों में अक्षर-क्रम 5,7,7, 5,7,7 होता है। चोका अर्थात् लम्बी कविता। इस में पंक्तियों की संख्या निश्चित नहीं होती। पंक्तियों में अक्षर-क्रम 5,7,5,7 का होता है। वस्तुतः जापानी हाइकु शिल्प के 5,7,5, अक्षरों की

क्रमावाली १७ अक्षरीय रचना ही अधिक प्रसिद्ध व प्रचलित है। भारत में भी हाइकुकार इसी पद्धति से हाइकु लिखते हैं।

पाठकों को इतना भी अवगत करा दें कि मातसुस बासू जो एक विख्यात सन्त थे उनके द्वारा सन् (१६४४-१६९४) के समय में हाइकु की शुरुआत हुई। दूसरे हाइकुकार हुए योमा भूषण (१७१६-१७८९), तीसरे प्रमुख कवि कोवेयासी ईसा (१७१६-१७८९) के हुए और चौथा हाइकुकार शिकि हुए। ये चार हाइकुकार हाइकु के जनक माने जाते हैं।

हाइकु लेखन का विधान -

इसमें ५,७, ५ अक्षरों के क्रम में त्रिपदी रचना की जाती है। अर्थात् पहली में ५ अक्षर, दूसरी पंक्तियों में ७ अक्षर और तीसरी पंक्ति में ५ अक्षर होते हैं उदाहरणः

सभ्य युवा में - ५ अक्षर
बर्बरता, धृष्टता - ७ अक्षर
रोती सभ्यता - ५ अक्षर

कुल १७ अक्षर और तीन पद अर्थात् तीन छोटे व अधूरे वाक्य होते है। याद रहे कि हाइकु में आधे अक्षरों और मात्राओं की गिनती नहीं होती और हाइकु अतुकान्त होता है। यह भी ध्यान रहे यद्यपि हाइकु १७ अक्षरों का होता है पर भाव-गंभीर होता है। हाइकु भाव-प्रधान कविता है। शब्दों की पकड़ और भाव को समाहित करने की क्षमता न होने से हाइकु छोटा होने पर भी नहीं लिखा जा सकता ।

जापान में लेखक हाइकु लिखने में इतने अभ्यस्त हो गये थे और हाइकु इतना लोकप्रिय हो गया था कि वहाँ मासिक ५० हाइकु पत्रिकाएँ निकलने लगी।

हाइकुकार मिलते और हाइकु कविता प्रतियोगिताओं में अपने हाइकु सुनाते और आनन्द लेते थे। लंदन, में स्थापित 'विश्व हाइकु कल्ब' वर्षों से चल रहा था। वहाँ 'विश्व हाइकु उत्सव' भी आयोजित होता था जिसमें देश-विदेश के हाइकुकार भाग लेते थे। वे वहाँ और हाइकु सुनाकर श्रोताओं को मुग्ध कर देते थे और प्रसिद्धि पाते थे। हाइकु किस चिड़िया का नाम है मॉरीशस वासी नहीं जानते थे लेकिन जो साहित्य

प्रेमी थे उन्होंने इस विधा को भारतीय पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ा ज़रूर था। गौरव की बात है कि श्री इन्द्रदेव भोला इन्द्रनाथ ने मॉरीशस के हिन्दी साहित्य में इस विधा हाइकु का प्रचलन किया है। इन्होंने 'गागर में सागर' हाइकु महाकाव्य का प्रणयन किया है। महात्मा गांधी संस्थान के प्रकाशन विभाग के पूर्व अध्यक्ष डॉ हेमराज सुन्दर ने इस महाकाव्य की भूमिका में लिखा है - "मॉरीशस में इस समय हाइकु कविता प्रचलित नहीं है और न ही यहाँ के अधिकांश कवि इसके लेखन शिल्प से अवगत हैं। इन्द्रनाथ कृत "गागर में सागर" हाइकु महाकाव्य है। गहन विचारों को ढूँढ-ढूँढकर थोड़े शब्दों में अभिव्यक्त करना सचमुच गागर में सागर भरने का काम कवि ने किया है। इन्होंने २,२४४ हाइकुओं की रचना करके हाइकु साहित्य में कीर्तिमान स्थापित किया है। मैं मानता हूँ कि इन्द्रदेव भोला जी की यह पहल मॉरीशस के हिन्दी साहित्य के गौरव की परिचायक है जो आने वाले हाइकुकारों का मार्गदशर्न करेगी।"

भारत के हिन्दी साहित्य के महान् समीक्षक डॉ कमल किशोर गोयनका लिखते हैं- "गागर में सागर' पढ़कर मैं अभिभूत हुआ। हाइकु छन्द में ऐसी कुशलता इतनी व्यापकता और इतनी निष्ठा दुर्लभ है। आपने हाइकु में एक इतिहास रचा है। आप में अद्भुत रचनात्मक ऊर्जा है जिसकी और हिन्दी साहित्य तथा साहित्यकारों का ध्यान जाना चाहिए। उस हाइकु महाकाव्य का भारत में प्रचार होना चाहिए। हाइकुकारों को भेजा जाना चाहिए। उन हाइकुओं में जिसकी संख्या २२४४ है और इतने शीर्षकों से हैं, विषयों का वैविध्य है, जिनमें प्रकृति है, पर्यावरण है। मानव जीवन है, समाज के बहुरंग हैं, मनोवृत्तियाँ, सम्बन्ध हैं, प्रेम-धर्म-सेवा के साथ अधर्म और अमानवीयता के भी प्रसंग है। इससे आप हमेशा के लिए हाइकुकार के रूप में स्थापित और प्रसिद्ध हो गए हैं।"

सेनफेल रोड
रिव्येर ज़ू राँपार

यह संसार कायरों के लिए नहीं है। भागने का प्रयत्न मत करो।
सफलता या असफलता की परवाह मत करो।
उठो! और काम में लग जाओ।
- स्वामी विवेकानंद

कहानी

शिकायत

- डॉ हेमराज सुन्दर

दीपा धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़ रही थी। उसके पाँव में हल्का-सा कंपन हो रहा था। हाथों में पसीने का गीलापन था। उसका गोरा चेहरा, बाल-मन और भावना के संघर्ष से लाल हो उठा था। कुछ ऊपर तक चढ़कर वह सहसा रुक गई। 'जाऊँ या न जाऊँ?' उसके कोमल मन में स्वाभाविक उलझन-सी बनी रही। फिर धीरज धारण कर वह अपनी अवस्था पर काबू कर पाई। 'ये लोग इस तरह क्यों जीते हैं? कोई व्यक्ति सिवाय अपने, दूसरों का विचारक्यों नहीं कर पाता? यह प्रतिकूल धारा क्यों बहती है? वे वह खुद को अपराधी क्यों नहीं समझते ?

दीपा के मन में अनेक प्रश्न उपस्थित हो रहे थे। यह आज ही नहीं, कई दिनों से ऐसा ही संघर्ष उसके मन में जारी था। उसकी युवावस्था इन विचारों से बहुत व्यथित मालूम हो रही थी। वह कई महीनों से सोच रही थी कि यूँही एक दिन अचानक, वहाँ जाकर देखना होगा, उनसे मिलना होगा और पूछना होगा कि आखिर ऐसा क्यों? आप को क्या अधिकार है मुझ निरपराधी की भावनाओं को व्यथित करने का?

पिछले दो महीनों से दीपा यहाँ तक कई बार आई थी और वापस लौट गई थी। परन्तु आज वह साहस बटोर कर आई थी पूरे आत्मबल के साथ। दीपा फिर क्षण भर के लिए रुक गई थी।

'मेरा अपमान हुआ तो? क्या वे लोग मेरा आतिथ्य करेंगे? क्या मुझसे ठीक तरह से पेश आएँगे? क्या मुझसे ठीक तरह से बात करेंगे ?' ये सारे प्रश्न मन में ही अनुत्तरित रह गये। फिर सोचा, कुछ भी हो आज जाना ही होगा। एक अनुभव के लिए ही सही। भला हो चाहे बुरा। आज यह अनुभव करना ही होगा। फिर चाहे सम्बन्धों में पूर्णविराम लग जाए यह फुल स्टॉप।

विचारों की उधेड़बुन में व्यस्त, दीपा कब उचित जगह पर पहुँच गई थी, उसे आप पता न चला। उसने एक बार संशय ग्रस्त आँखों से दरवाज़े का निरीक्षण किया। चेहरे पर उभरा हुआ पसीना पोंछ लिया। अन्दर से रिकॉर्ड के संगीत स्वर उसके कानों तक पहुँच रहे थे। हँसने की आवाज़ भी आ रही थी। ऐसा लगता था कि अन्दर के लोग खूब खुश होंगे। सभी स्वस्थ और सुखी होंगे.....।
दीपा ने कॉल बेल का बटन दबा दिया।
"कौन है?" अन्दर से आवाज़ आई।
"मैं हूँ, दीपा।"
दरवाज़ा खुला। उससे भी कम उम्र की एक लड़की दरवाज़े पर खड़ी थी। उसके कपड़े अच्छे थे। उसका रंग-रूप भी अच्छा था। वह भला क्यों न संतुष्ट होती? वह दीपा की अवस्था में थोड़ी ही थी।

"कौन है बेटे?" भीतर से पुरुष की आवाज़ आई। इसी बीच दीपा ने अन्दर कदम बढ़ाया। उन्होंने दीपा की ओर देखा। क्षण भर तो उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ। दीपा ने कौतूहल भरी नज़रों से उनकी ओर देखा। दीपा तो उन्हें पहचान सकती थी।
"मैं हूँ, दीपा।"
"ओह तुम हो। दीपा। वाह...आओ... यह तो बहुत खुशी की बात है। हमारी दीपा हमसे मिलने आई है। हमारी दीपा....।'

दीपा सचमुच चौक गई। क्या सचमुच उन्हें मेरे आने की खुशी हुई है? क्या सचमुच वे मुझे अभी तक अपना मानते हैं? फिर यह इतनी दूरी क्यों? यदि मेरे आने की इतनी खुशी है, तो वे मुझसे मिलने कभी क्यों नहीं आए?

इतना आतिथ्य देखकर दीपा अपने को शर्मिंदा महसूस करने लगी थी। वह मन ही मन स्वयं से पूछ रही थी -
"इतने भले और अच्छे आदमी पर मैं क्यों चिढ़ रही थी इतने दिनों से....?"

दीपा सोफ़े पर बैठ गई। घर के सामान को देख रही थी। उन्होंने दीपा की पीठ पर हाथ रखा,
फिर सिर पर। मानो बेटी को आशीर्वाद दे रहे हों। अब तक रूपा भी अन्दर आ गई थी। वह सामने की कुर्सी पर बैठ गई और बोली -

"कैसी हो दीपा बेटी? अच्छा हुआ जो तुम आई, नहीं तो एक दूसरे की पहचान न हो पाती। तुम्हारी मम्मी कैसी है?"
"ठीक है" दीपा ने धीरे से उत्तर दिया।
"घर में सब ठीक हैं न?"
"हाँ! सब ठीक हैं।" उसका स्वर अभी भी अस्थिर था......

दीपा सहमी-सी बैठी सब देख-सुन रही थी। वह अन्दर-ही-अन्दर मोम की भाँति पिघल रही थी। यह उसको किंचित भी अपेक्षित न थी। क्या इन्सान इतना संवेदनशील हो सकता है, वह अपने मन से पूछ रही थी।
"चुप क्यों हो दीपा?" रूपा ने मौन तोड़ा।
"जी, कुछ नहीं....यूँ ही!"

वास्तव में वह अपने पिता के बर्ताव की शिकायत के इरादे से आई थी। उलाहना देने आई थी। पर, स्थिति ही बदली-सी थी। फिर वह क्या बोले?

"मीता, अन्दर जा और विशाल को बुला ला। और तुम तीनों इधर आकर बैठो फिर बताऊँगा हमारी यह मेहमान कौन है?" पिता ने प्रसन्नतापूर्वक कहा। कुछ देर से विशाल भी आ पहुँचा।

दीपा बेटी, बताओ, तुम क्या लोगी?' रूपा ने आग्रह किया।
"जी, कुछ नहीं। थैंक यू। धन्यवाद। मैं बस यूँ ही आई थी। आप सब से मिलने.....।"
रूपा ज़ोर से हँस पड़ी।
"अरी! वह तो ज़ाहिर है। हम से मिलने आई हो। अब ज़रा-सा-कुछ खा-पी लो। फिर शाम को खाना खाकर ही जाना।"
"जी नहीं, खाना तो नहीं खाऊँगी। माँ राह देखेगी। माँ को मालूम भी नहीं कि मैं यहाँ आई हूँ।"
" कोई बात नहीं। मैं खाना जल्दी लगा दूँगी और हम तुम्हें घर पहुँचा भी देंगे। फिर तो माँ कुछ नहीं कहेगी न?"

दीपा आगे और कुछ न कह सकी। फिर विशाल, दीपा और मीता तीनों को रूपा ने पास बिठाया।

"जानते हो हमारा यह मेहमान कौन है?"

"कौन है पिताजी? मीता ने धीमे स्वर में पूछा।"
"यह है तुम्हारी बड़ी दीदी - दीपा।"
"सच!"
"हाँ, बिल्कुल सच।"
विशाल और मीता दोनों प्रसन्नता से खिल उठे। दीपा की नम आँखों में भी स्नेह उमड़ पड़ा किन्तु अगले ही क्षण फिर से उसे संदेह ने घेर लिया।
"हाँ ! हाँ! तुम्हारी बड़ी बहन - हमारी दीपा। वे बोले।
रूपा ने दोहराया -- "दीपा तुम दोनों की बड़ी दीदी हैं। तुम्हारे पापा दीपा के भी पापा हैं। दीपा के पिताजी....!

इतना सुनते ही दीपा की आँखों से आँसू छलक उठे। कितना खुश परिवार है यह ? मेरे पापा की दूसरी पत्नी - रूपा।वह भी कितनी अच्छी है।

उनके बच्चे मीता और विशाल। एक खुशहाल परिवार घर में खुशी की चपलता। घर में संतोष और सुख ! मासूम बच्ची ने यह सब पढ़ लिया था.....!

जीवन में सब कुछ मिलना चाहिए। माता-पिता, भाई बहन का प्यार..... सब कुछ। घर में पिता का न होना कितना खलता है......। यह दीपा के लिए बड़ा दुख का विषय है। दीपा की माँ ने वैसे भी माता-पिता का पूरा प्यार और संरक्षण दिया था। फिर भी पिता का घर में न होना एक बहुत बड़ी कमी थी। एक अन्तहीन सूनापन था। वह कई बार अपनी माँ से पूछ चुकी थी कि किस वजह से पिता ने उन दोनों को त्याग दिया था और माँ का एक ही उत्तर था -

"बेटी, हम दोनों में गहरे मतभेद आ गये थे। एक दूसरे के साथ रहना ठीक नहीं समझी।"
क्यों ? क्यों थे ये मतभेद? परिणाम क्या हुआ? दीपा के जीवन पर कितना गहरा असर पड़ गया? एक टीस....एक दर्द....एक व्यथा। एक सूनापन....एक अभाव...उत्पीड़न..... संघर्ष!! बड़ों की कड़ी सजा !! एक निर्दोष बालिका को।

कुछ ही महीनों पहले दीपा को पता चला था कि उसके पिताजी का यहाँ तबादला हुआ है। और वह अपने पूरे परिवार के साथ यहाँ के गाँव में रहने आ गये हैं। कई बार दीपा ने सोचा कि एक बार वह अपने पिता से मिलने आएगी। और वह उलाहना देकर पूछेगी कि उसकी जैसी निरपराधी पुत्री को दुखी रखने का उन्हें क्या अधिकार था? हो सके तो वह अपने पिता तथा उनकी दूसरी पत्नी को भी धिक्कारेगी.....।

दीपा को लगा था कि उसके पिता उससे बात तक नहीं करेंगे। पिता की दूसरी पत्नी उसे धक्के देकर बाहर कर देगी।

उसे लगा कि पिता की दूसरी पत्नी नाक उठाकर अन्दर चली जाएगी और फिर उसे फूटी आँख भी नहीं
देखेगी। पिता के पुत्र और पुत्री उसका तिरस्कार करेंगे....!

परन्तु ऐसा कुछ भी नहीं था। सारा कुछ साफ़ और निर्मल था। वहाँ का सारा दृश्य देखकर दीपा चौक गई थी। पिता ने उसका भव्य स्वागत किया था। उसे मुलायम सोफ़े पर बिठाया था। पिता की दूसरी पत्नी ने उसके गाल बड़े प्यार से चूमे थे और गले से लगाया था। वह हँस-हँस कर बात कर रही थी। पिता के दोनों बच्चों ने भी उसका सम्मान किया था। वहाँ तो कोई जुदाई नहीं थी।

रूपा का किया हुआ आग्रह वह ठुकरा न सकी। उसे रुकना ही होगा। वह इन बच्चों से जी भरकर बातें करेगी । अपने पिता से जी भरकर बातें करेगी। अपने पिता के साथ खाना खाएगी। उसके घर में पिता बेशक ना हो परन्तु पिता के साथ आज वह यहाँ भी उस घर की बड़ी दीदी बनकर बैठी थी....।

सारा समय कैसे बीत गया कुछ पता ही न चला। मीता ने उसे अपने पसन्द के रिकॉर्ड सुनाए तो विशाल ने अपने अल्बम के सारे फ़ोटो दिखाए। सब ने मिलकर शाम का खाना एक ही टेबल पर खाया। बीच-बीच में पिताजी और रूपा भी उससे कुछ-कुछ प्रश्न पूछते रहे। कुछ--कुछ ख़बर सुनाते रहे। रूपा बार-बार उसकी माँ के स्वास्थ्य और सर्विस के बारे में पूछती। पिता ने एक बार भी उसकी माँ के बारे में न पूछा।
समय अच्छी तरह से कट गया। वह एक सुखी और संतुष्ट परिवार था। सिर्फ़ उसमें दो प्राणियों की कमी थी - एक उसकी माँ और दूसरी दीपा की। दीपा को यह समझते

देर नहीं लगी कि अवश्य उसकी माँ में कोई ऐब रहा होगा जो पिता ने उसका त्याग कर दिया....।

प्वेंत-ओ-पिमाँ
त्रिओले

- दौलत से आदमी को जो सम्मान मिलता है, वह उसका नहीं, उसकी दौलत का सम्मान है।"

- "मनुष्य का उद्धार पुत्र से नहीं, अपने कर्मों से होता है। यश और कीर्ति भी कर्मों से प्राप्त होती है, सन्तान वह सबसे कठिन परीक्षा है, जो ईश्वर ने मनुष्य को परखने के लिए दी है। बड़ी-बड़ी आत्माएँ, जो सभी परीक्षाओं में सफल हो जाती हैं, यहाँ ठोकर खाकर गिर पड़ती है।

- "जीवन का वास्तविक सुख, दूसरों को सुख देने में है"उनका सुख लूटने में नहीं।"

- "जब हम अपनी भूल पर लज्जित होते हैं, तो यथार्थ बात अपने आप ही मुँह से निकल पड़ती है।"

- "अपनी भूल अपने ही हाथ सुधर जाए तो यह उससे कहीं अच्छा है कि दूसरा उसे सुधारे।"

- मुंशी प्रेमचंद

फिर हुआ एक सपने का अन्त

- सोमदत्त काशीनाथ

आज अपने घर की ड्योढ़ी पर बैठा अमित पहले की अपेक्षा कुछ अधिक निराश लग रहा है। लेकिन उसे ऐसे शान्त बैठे हुए देखकर न तो उसके घरवालों को कोई फर्क पड़ रहा है और न ही उसके आस-पड़ोस के लोगों के मन में किसी प्रकार की जिज्ञासा उत्पन्न हो रही है। वह तो, इन दो सप्ताहों में, तीन-चार दिन ऐसे ही घण्टों ऐसे ही शून्य में झाँकता हुआ दिख ही जाता है। शायद इसलिए आज भी उसे अन्यमनस्क बैठे देखकर किसी पर भी कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ रहा है। कभी उसके उद्विग्न मन की शान्ति को भंग करने के लिए पत्थर की छोटी सी मज़बूत परन्तु जगह-जगह से टूटी हुई दीवाल से उस पार से कोई आवाज़ उसके कानों में पड़ जाती है, *"नमस्ते भैया! कैसे हैं आप?"*

अपनी चुप्पी को भंग न करना चाहते हुए भी उसे कुछ बोलना ही पड़ जाता है, *"नमस्ते! नमस्ते! बस ठीक है। ऐसे ही सिर में दर्द हो रहा था इसीलिए घर से बाहर ठंडी हवा खाने आ गया।"*

चालीस साल के इस व्यक्ति में जीवन का रस इस तरह सूख गया है मानो कोई साठ-सत्तर साल का वयोवृद्ध अपने जीवन की अन्तिम घड़ियों में अपने बाल-बच्चों के स्वार्थपूर्ण मनोवृत्ति से परेशान बैठा इस ताक में हो कि कब यमराज की कृपा दृष्टि उसपर पड़े और उसे परिवार के झंझटों से मुक्ति मिल जाए। किन्तु दिन को रात में बदलते देखना और रात के बाद पुनः नई सुबह के आने से परिवार के साथ-साथ यमदेव की निर्दयता उसके हृदय की शुष्कता को बढ़ाती ही जाती है। अपनी रुखाई के छींटें औरों पर न पड़े इसीलिए वृद्ध व्यक्ति किसी कोने में बैठकर अपने अच्छे दिनों के बारे में सोचने बैठ जाता है और अपनी कल्पना के घोड़ों के रुख को अपने अतीत की ओर मोड़कर हृदय के जलते हुए अंगारों को शान्त करने की कोशिश करता है। उसे आनन्द तो नहीं मिलता है किन्तु यह आश्वासन अवश्य मिलता है कि वह दूसरों की तरह अवसरवादी या मजबूर लोगों का खून चूसने वाली जोंक नहीं बना। धीरे-धीरे वह भावनाओं और स्मृतियों के बीच तिरोहित होने लगता है। या फिर ऐसा

कहिए कि वह अपने वर्तमान से पलायन करने के लिए अपने अतीत की स्मरणीय बातों को इधर-उधर से खोद निकालता है। गरीबों के पास यही तो सबसे मूल्यवान हथियार होता है - मौन! अपने इसी मौन को वह सहनशीलता, सहनशक्ति का नाम दे कर अमीरों के शोषण को मान लेता है।

अमित के अनुभव समृद्ध तो हैं किन्तु इतने प्रिय नहीं कि वह अपने बीते हुए जीवन की बातों का स्मरण करने के लिए हर सप्ताह घंटे-दो घंटे खाली बैठकर उनका मूल्यांकन करने लगे। उसने जबसे होश संभाला गरीबी के अनेक रूप देखे हैं। कभी भूख तो कभी दमित करने की शिक्षा देने वाली गरीबी, कभी अपने सपनों की उड़ान को, संन्यासियों की भाँति, नियंत्रित करने का पाठ पढ़ाने वाली गरीबी और कभी अपने प्रयासों को विफल होते देख धैर्य धारण कराने वाली गरीबी।

गरीबी ही आत्मसंतुष्टि का वह प्रथम सोपान होता है जो व्यक्ति को अपनी कठिन से कठिन परिस्थितियों से समझौता करना सिखा ही देता है। इतना ही नहीं, गरीबी की निष्ठा तो देखिए - यदि एक बार वह किसी के साथ चिपक जाती है तो वह उससे विमुख होने का नाम ही नहीं लेती है। इसे एक विडम्बना माना जाए या फिर ईश्वर की कृपा - इसपर चिन्तन होता रहेगा और संसार की अनश्वरता को प्रमाणित करने के लिए गरीबी कायम ही रहेगी।

प्रायः अभावग्रस्त जीवन जीने वाले लोगों के मन में यही इच्छा होती है कि जो दुख हमने झेले हैं हमारी संतानों के जीवन पर उनका लेशमात्र भी प्रभाव न पड़े। अमित को यह बार-बार यह स्मरण होता है कि उसके पिताजी ने दिन-रात एक करके अपने और अपने परिवार का पेट काटकर उसे पढ़ाया-लिखाया; इस उम्मीद से कि ज़्यादा पढ़ने से उसे आसानी से कोई अच्छी नौकरी मिल जाएगी और वह पिता के बुढ़ापे का सहारा बन पाएगा, उसने एक के बाद एक कई परीक्षाएँ दीं और सभी परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुआ। वह सोचता था कि अपने अनुजों तथा अनुजाओं को पढ़ाने में तथा उनका विवाह कराने में हाथ बँटाएगा। किन्तु कालचक्र की गति को भाँपने में न तो अमित सफल रहा और न ही उसका पिता।

पढ़ाई में बेटे ने कोई कसर नहीं छोड़ी और पिता ने भी उसकी निष्ठा को देखकर बी. ए. के बाद एम. ए. की डिग्री के लिए ज़मीन बेचकर अपने उत्तरदायित्व परायणता का

प्रमाण दिया। जब कभी कुछ कमी रह जाती है तब पिता अपने रिश्तेदारों और दोस्तों से उधार ले लेता था। आज से पंद्रह साल पहले अमित की पढ़ाई समाप्त हुई।

किन्तु वह कहाँ जानता है कि विश्वविद्यालय की पढ़ाई तो समाप्त हो गई किन्तु जीवन में योग्यता सफलता का सोपान नहीं होती है बल्कि जान-पहचान , रिश्तेदारी और रिश्वतखोरी ही अपने स्नेहपात्रों को उत्तीर्ण कराती हैं। इसीलिए अमित के प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने की खुशी ने परिवार में उम्मीदों की लहर दौड़ाई उसमें केवल वेग था, गहराई नहीं थी। दोस्तों के मुख पर 'बधाई' के संदेशों में हर्ष से अधिक ईर्ष्या की भावना भी टपक रही थी। वह उस समय उन शिथिल मुस्कानों के पीछे की कड़वाहट को पहचान नहीं पाया था। सोचता था कि उसने जिन दोस्तों की मदद की है वे उसकी सफलता से खुश थे किन्तु वह उस छलावे से अभिज्ञ रहा। जीवन के अनुभव ने आज उसके सामने यह प्रत्यक्ष प्रमाण खड़ा कर दिया है कि आदमी केवल अपनी खुशी से खुश होता है और दूसरों की खुशी से वह दुखी ही रहता है।

जब नौकरी ढूँढने का सिलसिला आरम्भ हुआ तब सभी उसका हौसला बढ़ाने के लिए कहते, *" स्कूल सर्टिफिकेट से लेकर एम.ए. तक तुम्हारे परिणाम अच्छे रहे हैं। तुम्हें तो चुटकी में कही भी नौकरी मिल सकती है। बस तुम थोड़ा सब्र से काम लो। आज नहीं तो कल तुम्हारी बारी आएगी।"*

तीन-चार महीनों तक अमित ने इस दफ़्तर से उस दफ़्तर के चक्कर काटे और जहाँ भी खाली जगहों के लिए विज्ञप्तियाँ दिखाई पड़तीं वहाँ-वहाँ उसने अर्ज़ियाँ दीं, किन्तु विपरीत हवा को कौन रोक सकता था। सभी दफ़्तरों के अधिकारियों से मुख-विवर से एक ही मूल-मंत्र निःसृत होता, *" आपके रिज़ल्ट तो बहुत अच्छे हैं। यदि हमारे यहाँ कोई पोस्ट खाली होती तो अवश्य ही आपको रख लेते। फिर भी हम आपका ऍप्लिकेशन (आवेदन) रख रहे हैं। यदि हमारे यहाँ निकट भविष्य में कोई जगह खाली होगी तो हम अवश्य आपको सूचित करेंगे।"*

उन अधिकारियों की बातों में कितनी सान्त्वना थी और कितने मखौल से भरे शब्द थे इसका अनुमान अमित को नहीं था। व्यंग्य और विडम्बना में अधिक अन्तर नहीं होता है। जो इन दोनों स्थितियों को जीता है वही उनकी गुत्थियों को भाँपकर यह निष्कर्ष निकाल सकता है। जिन-जिन जगहों से सकारात्मक उत्तर आने से आसार

दिख रहे थे; सुनने में आता था कि अमुक कार्यालय में एक रिक्ति थी और उसकी पूर्ति करने के लिए अमुक व्यक्ति को रखा गया है। प्रायः वे 'अमुक व्यक्ति' अमित के परिचित ही होते क्योंकि एक अध्ययन-क्षेत्र से जुड़े रहने के कारण किसी न किसी साक्षात्कार में जान-पहचान हो जाना कोई बड़ी बात नहीं थी। बड़ी बात तो यह थी कि जो अमित के पास श्रेष्ठ परिणाम तो थे किन्तु जो अन्यों के पास थी वह चीज़ अमित के पास बिल्कुल नहीं थी। वह थी- सिफ़ारिश। जिस समाज में भ्रष्टाचार ही शिष्टाचार बन जाता है वहाँ सिफ़ारिशों का होना और घूस देना नौकरी प्राप्त करने के लिए कितना अनिवार्य हो जाता है - इस बात का मर्म केवल नौकरी देनेवालों को पता होता है। जहाँ जेब गरम होती है वहीं दिल नरम होता है। समाज द्वारा अपनाए गए इन मूल मंत्रों का गरीबों पर कितना गहरा प्रभाव पड़ता है, इसके विषय में सोचने वाला कोई नहीं। जो उसका अनुभव करते उन्हें समाज की संचालन-पद्धति के विरूद्ध कुछ भी कहने का अधिकार नहीं। इस निर्मम कुठार से किस प्रकार नई पीढ़ी के सपनों का हनन हो रहा है - यह किसी के लिए कभी चिंता का विषय नहीं बना।

अब प्रश्न सिफ़ारिश का उठता है तो गरीबी से उबरने का उद्दंड दुस्साहस करनेवाले इस नवजवान की सिफ़ारिश कौन करता? क्योंकि सिफ़ारिश भी उन्हें दी जाती है जिनसे उस सिफ़ारिश के बदले में कुछ मिलने की अपेक्षा की जा सकती हो। स्वार्थी संसार ने 'परदुखकातरता' तथा 'निःस्वार्थ' सेवा जैसे शब्दों को अर्थहीन बना दिया है। आज न तो कोई राजा रहा है और न कोई रंक। आधुनिक शिक्षा तथा नव-मानवतावादी चेतना ने सभी को समतल भूमि पर लाकर खड़ा कर दिया है। यदि कोई कुछ लेता है तो उसमें कुछ देने की शक्ति होनी चाहिए और यदि कोई कुछ देता है तो उसके लिए भी कुछ मिलने का प्रावधान होना चाहिए। यदि इस नियम का पालन न हो तो उसे गौतम बुद्ध के उस आप्त-वाक्य का स्मरण कर लेना आवश्यक होगा कि, *"शून्य से शून्य की ही उत्पति होती है।"* जहाँ कुछ न हो वहाँ सृजन कैसे हो पाएगा?

समय के साथ-साथ अमित ने भी धीरे-धीरे संसार के इस गूढ़ रहस्य को पहचान ही लिया और उसने अच्छी नौकरी मिलने की इच्छा रखने का दुस्साहस करना छोड़ दिया। किन्तु जहाँ गरीबी और विवशता होती है वहाँ पंक्ति में स्वतः उनके परिवार का एक और सदस्य आकर खड़ा हो ही जाती है, वह है - शोषण!

साल-भर कोई निश्चित और स्थिर नौकरी न मिलने के कारण अमित ने अपने एक मामा के यहाँ नौकरी कर ली। मामा एक ठेकेदार थे और मकानों के निर्माण का काम करते थे। अमित को साईट-सुपरवाइज़र की नौकरी तो दे दी किन्तु उससे लेखा-जोखी के साथ-साथ मिस्त्री की मदद करने का काम, साईट की सफाई करने का काम तथा पहरेदारी का काम भी लिया जाने लगा। अमित के स्वाभिमान को ठेस तो पहुँचती थी किन्तु स्वाभिमान से पेट नहीं भरता है और न ही लोगों के ताने बन्द होते हैं कि *"लड़का पढ़-लिखकर भी नाकारा-निखट्टू बन गया।"* ऐसे पैने शब्द बार-बार उसके कानों में न चुभें इसीलिए अमित ने हलाहल के घूंट पीना ही श्रेयस्कर समझा। कोई भी मनोवेत्ता और दार्शनिक यही कहेगा कि समझदार व्यक्ति के यही लक्षण होते हैं कि वे परिस्थितियों से समझौता करना जानते हैं। किन्तु ऐसे लोग व्यक्ति के हृदय की उन दमित भावनाओं को देखने में वे असमर्थ होते हैं। क्या ऐसा करने में वे अक्षम होते हैं, या फिर वे सच को सामने लाने से डरते हैं? या ऐसा भी हो सकता है कि सच पर विचार करने से उन्हें आत्म-ग्लानि होती होगी।

रात-भर काम करने पर जब अमित ने मामा से 'ओवर-टाइम' की बात की तब जवाब आया, *" किस बात का ओवर-टाइम? तुम्हें तो मेरा धन्यवाद करना चाहिए कि मैंने तुम्हें नौकरी पर रखा नहीं होता तो तुम अभी भी नौकरी की भीख माँग रहे होते।"* अमित को ये शब्द शूल-समान तो लगे फिर माँ के मनाने पर उसने अपनी आत्मा के स्वर को दमित कर दिया। छह-सात वर्षों तक ऐसी ही स्थिति में काम करना कितना कठिन होता है - इसका अनुमान कोई क्या लगाएगा?

इन सात वर्षों में ही अमित का विवाह हो गया। अमित की पत्नी बहुत समझदार निकली। प्रायः आधुनिक पत्नियों की भाँति उसने भी पति को दास या फिर अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने वाला जिन समझा। पति की परेशानियों को अनदेखा करने की कला में निपुण पत्नी में अपनी बात मनवाने की खूबी कूट-कूटकर भरी थी। पत्नी कई बार आक्षेप करती थी कि अमित अपने परिवार को पर्याप्त समय नहीं दे रहा है। इसी बीच मामा ने तीन-चार मास तक वेतन नहीं दिया तब एक दिन अमित ने मामा की नौकरी छोड़ दी और खेती करने की ठान ली। पिता ने आर्थिक कठिनाइयों की घड़ियों में पुत्र की सहायता की और अमित के खेत में हाथ भी बँटाया।

किन्तु जैसा वह प्रायः पढ़ता था कि - *'धरती सोना उगलती है'* या फिर *'मेहनत का फल मीठा होता है'*; उसे ये कहावतें सार्थक होती हुई कभी नहीं लगी। कभी-कभी खेत

जितनी खाद और जितनी कीटनाशक दवाइयाँ निगल जाता उसे उससे बहुत कम आमदनी मिलती। पत्नी की नौकरी का जितना लाभ अमित को मिला, उससे अधिक गालियाँ और ताने सुनने को मिले। फिर ऐसे में उसे अपनी दादीजी के उन प्रेरणा भरे शब्दों का स्मरण हो रहा है, *"बेटा जो सरस्वती की सेवा करते हैं, स्वयं लक्ष्मी उनकी सेवा करने पहुँच जाती है।"* इस बात में कितनी सार्थकता है, अमित ने अपने जीवन के पिछले पंद्रह सालों में इसे भली-भाँति अनुभूत किया है। आज से पहले वह निराश तो होता था किन्तु कभी निराशावादी नहीं बना। किन्तु कुछ दिनों से अमित को लगने लगा है कि गृह-क्लेश और जीवन के कष्टों का एक ही हल है - मृत्यु।

सें पोल, फेनिक्स

वे मुस्काते फूल, नहीं
जिनको आता है मुरझाना
वे तारों के दीप नहीं,
जिनको भाता है बुझ जाना
वे नीलम के मेघ, नहीं
जिनको है घुल जाने की चाह,
वह अनन्त ऋतुराज नहीं
जिसने देखी जाने की राह

- महादेवी वर्मा

सरेण्डर

अमरेन्द्र सुमन

रह-रहकर बंदूकों की आवाज़ से पूरा इलाका भयाक्रांत था, पुराने माहौल के लौटने तक औरत-मर्द, बच्चे घरों में दुबके पड़े थे। जंगल, पहाड़, पेड़-पौधों में गहरी उदासी छायी थी। पारा मिलिट्री फोर्स व एसएसबी सहित ज़िला पुलिस के जवानों की सघन छापेमारी सड़क किनारे की बस्तियों में जारी थी। इंच-इंच जमीन का टुकड़ा हतप्रभ था। संगीनों के साये में चल रही थी ग्रामीणों के दिलों की धड़कने।

दो दिन पूर्व ही घात लगाए नक्सलियों ने एलआरपी में शामिल जवानों को गोलियों से भून डाला था। कई घण्टों तक मुठभेड़ होती रही। नक्सलियों का सामना करते हुए कई जवान काल-कलवित हो गए। जो बच गए, अंतिम सांसें गिन रहे थे। यह पहली घटना नहीं थी। इससे पूर्व भी अलग-अलग क्षेत्रों में इस तरह की घटनाओं को अंजाम दिया गया था।

जनरल कमांडर हार्डकोर माओवादी लुल्हा गंझू की सरगर्मी से तलाश थी। ज़िन्दा या मुर्दा पकड़ने/गोपनीय सूचना देने वालों के लिए दस लाख रुपये के इनाम रखे गए थे। दरो-दीवार पर सटे इश्तेहारों/पर्चों में खूंखार नक्सली की तस्वीरें मौजूद थी।

शहर के एक बड़े स्कूल में पाँचवीं की छात्रा गुंजा आज बेहद परेशान थी। स्टूडेन्स से लेकर टीचर तक के बीच लुल्हा गंझू की हो रही चर्चा से उसका दिल बैठा जा रहा था। कोई अनहोनी तो नहीं होने वाली...? जल्द से जल्द वह वापस लौट जाना चाहती थी घर। लुल्हा गंझू उसके पिता हैं। ज़रूरी नहीं कि स्कूल की चर्चा में शामिल व्यक्ति उसके पिता ही हों। कोई दूसरा भी हो सकता है? अच्छे-बुरे विचार मन में आते, मिट जाते। घर पर लगातार बढ़ रही माँ की बेचैनी को सोचकर, बच्ची की शंका और भी मज़बूत होती जा रही थी -

घर पहुँचकर उसने पूछा ,
'क्या बात है माँ, इतनी परेशान क्यों दिख रही..?'
बस यूँ ही, माँ ने कहा।

ज़रूर कोई गंभीर बात है, बच्ची जानती थी। उसने कहा-
पापा कब लौटेंगे ममा?
कह नहीं सकती बेटा।

माँ के संक्षिप्त व निराशाजनक उत्तर से बच्ची का गला रुँधा जा रहा था। वह काफ़ी विचलित थी। प्राणों से भी प्यारे थे उसके पापा। पापा...पापा... की रट लगाए बच्ची गुज़ारती रही एक-एक पल। कई दिनों तक घर पर चूल्हा नहीं जला। जिस पिता के संरक्षण व प्यार की छांव में पल-पल बढ़ रही थी, क्या मालूम इंसानों के ख़ून के प्यासे होंगे वे। शहर के सम्पन्न इलाके के एक फ़्लैट में माँ-बेटी अकेली रह रही थीं। पुलिस को भनक लगी। घर को घेर लिया। बहत्तर घंटे के भीतर लुल्हा गंझू को सौंपने का अल्टीमेटम देकर वे चले गए। इधर पत्नी के होश उड़े हुए थे। काटो तो ख़ून नहीं की स्थिति थी उसकी। पत्नी व बच्ची को पुलिस ट्रेस कर चुकी है, लुल्हा गंझू को पता था। इस बार उसके बचने की कोई उम्मीद नहीं। पुलिस या मुठभेड़ में मारा जाना उसे स्वीकार था, किन्तु सरेंडर नहीं करेगा...? वह प्रतिज्ञा कर चुका था।
कहीं बच्ची को कुछ हो गया तो...?

पत्नी व बच्ची को टॉर्चर किये जाने का भय उसे सताये जा रहा था। जल्द से जल्द बच्ची तक पहुँचने की कोशिश में दिमाग खपाता रहा। भारी सुरक्षा व्यवस्था के बावजूद पुलिस को चकमा देकर एक रात पहुँच ही गया पत्नी व बच्ची तक।
सामने पिता को पाकर बच्ची की ख़ुशी का ठिकाना नहीं रहा। *पापा...पापा...* कहकर गोद में बच्ची ऐसी समायी कि नींद कब आ गई उसे लुल्हा गंझू तक को पता नहीं चला। डर व उदासी से बेचैन पत्नी सामान्य हो चुकी थी। लुल्हा गंझू के चेहरे पर छोटे-बड़े आकर के चुंबनों का कोलाज़ सजा था। इश्तेहार में छपी तस्वीर व पुलिस की लगातार दबिश की कहानी रो-रोकर बच्ची से सुन चुका था।

पापा कहते थे न कि ख़ूब मन लगाकर पढ़ना है, बड़ा आदमी बनना है? *ख़ूब मन लगाकर पढ़ूँगी। मैं भी पुलिस अफ़सर बनना चाहती हूँ। मुझे छोड़कर तो नहीं जाओगे?* गोद में सोयी बच्ची ने जगते ही कहा।
बेटी की आँखों से बह रहे अविरल आँसुओं से लुल्हा गंझू की सारी हेकड़ी रफ़ता-रफ़ता बंद हो गई। टूट चुका था वह अंदर से। तभी फ़ोन की घंटी बजी। गिरफ़्तारी के लिये पुलिस एक्शन में आ चुकी थी। घर में प्रवेश कर रहे पुलिस को देखकर बच्ची पिता के सीने से फिर एक बार चिपक गई।

'सालों दे मे'

(मई महीने का कला निकेतन)

- अलका धनपत

सन् १९६८ की बात है। महात्मा गांधी संस्थान के 'फ़ाइन ऑर्ट्स विभाग' ने मॉरीशस की उभरती प्रतिभाओं, कलाकारों के लिए एक प्रदर्शनी का प्रारम्भ किया। उन कलाकारों को मई मास में एक ऐसा मंच संस्थान ने प्रदान किया, जिससे उनकी पहचान कला-प्रमियों में होने लगी। आज इस 'सालों दे मे' ने राष्ट्रीय प्रदर्शनी का रूप ले लिया है।

'सालों दे मे' महात्मा गांधी संस्थान के 'स्कूल ऑफ फ़ाइन ऑर्ट्स की एक वार्षिक गतिविधि है। मई महीने में होने वाले इस कला-निकेतन प्रदर्शनी में प्रथम बार ४० कलाकारों ने भाग लिया था। इस प्रथम प्रदर्शनी को प्रारम्भ करने वाले थे श्री मूर्ति नागालिंगम। जो उस समय विभागाध्यक्ष भी थे। उनके सहयोगी थे श्रीमती माला चमन, श्रीमती निर्मला लखीनारायण, श्री तुलसी जयमंगल तथा श्री दोसवा आदि। उनकी संकल्पना थी कि हमारे कलाकारों को महात्मा गांधी संस्थान में एक मंच मिल सके। इसका आज इतना प्रचार-प्रसार हो चुका है कि राष्ट्रीय स्तर के कलाकारों की कृतियाँ यहाँ से कला प्रेमी खरीदने के लिए उत्सुक रहते हैं। यह कला-निकेतन प्रदर्शनी आज मॉरीशस के प्रोफ़ेशनल्स या ख्याति प्राप्त कलाकारों को एक मंच पर लाती है। आज इसमें लगभग सत्तर तक कलाकार भाग ने लेते हैं।

उस प्रदर्शिनी की तैयारी में साता स्कूल परिश्रम करता है। उसमें महात्मा गांधी संस्थान से बी.ए. ऑनर्ज़ कर चुके छात्र भी भाग लेते हैं।

इस वर्ष मॉरीशस अपनी आज़ादी की ५०वीं वर्षगांठ मना रहा है। अतः स्कूल ने अपने सभी कलाकारों को १९६८ से २०१७ तक एक-एक वर्ष शीर्षक के रूप में दिया था। प्रदर्शनी में प्रस्तुत की गई कला-कृतियों का आधार उस वर्ष में हुई कोई विशेष घटना थी। इन कला-कृतियों की कीमत १०,००० रुपये से लेकर २२५,००० तक भी है। उस 'सालों दे में' को देखने लिए कला-प्रेमी पर्यटक, विद्यालयों के छात्र, कला अध्यापक, स्वतन्त्र कलाकार, व्यापारी तथा विश्वविद्यालय के छात्र-छात्राएँ भी आते हैं। आज यह 'सालों दे-मे' महात्मा गांधी संस्थान की एक महत्वपूर्ण वार्षिक कला प्रदर्शनी है। यह प्रदर्शनी लगभग दो माह तक खुली रहती है।

तीर्थ यात्रा

- सूर्यदेव सिबरत

माँ!
जा रहा हूँ
तीर्थ यात्रा पर
परी तालाब को नहीं
पर्वत पर
किसी मंदिर को भी नहीं
किसी पुण्य-भूमि को नहीं।
आ रहा हूँ मैं
उस स्थान की धूल को
माथे पर चढ़ाने
प्रथम मालाबार कुली के
प्रथम चरण पड़े थे जहाँ
मॉरीशस की धरती पर।
दर्शन करने जा रहा हूँ
पत्थर की
उन पुरानी रोती हुई
चिमनियों के
जो पड़ी हैं अकेली
ईख के, बीच खेतों में
जिस के हर पत्थर के नीचे
कुलियों की
सफ़ेद अस्थियाँ
झाँक रही हैं
मेरी आत्मा को।
हवा के हर झोंके से
निकल रही है जिनसे
आह! आह! आह!

डॉ हेमराज सुन्दर की कविताएँ

बेरोज़गारी का समुन्दर

शिक्षा और डिग्री है
हम नवजवानों के साथ।
कब तक मारे--मारे फिरेंगे
क्यों जीयें हम मजबूरी के साथ?

नौकरी की तलाश में
हम घूमते हैं दर--बदर।
कब तक हम बोझ बनेंगे
बूढ़े माँ--बाप के कन्धों पर?

बेरोज़गारी के अभिशाप से
मेरे ईश्वर ! कब मुक्त होंगे हम?
अपने बुने सपनों को
कब साकार करेंगे हम ?

लायक बाहर! ना-लायक कुर्सी पर
कैसा युग? कैसा कहर?
महंगाई तोड़ रही कमर
बढ़ रहा बेरोज़गारी का समुन्दर!!

* * *

शहरी-संस्कृति की ओर

यह कैसी भागमभाग
यह कैसी हेरा-फेरी?
जो गाँव में बसा है
उस पर शहरी-संस्कृति की बुखार चढ़ा।

लोक-गीतों की जगह अब गाँवों में
फिल्मी गानों की भूत चढ़ा?
गाँवों की सामूहिकता भंग हो रही
उसकी एकता खंडित हो रही!

लोक-कलाकार जो गाँव के हृदय में वास करते थे
अब दाने-दाने को मोहताज हुए
होली, चौताल, नौटंकी सब लुप्त हो रहे।
कलाकार और श्रद्धालु
सब मारे-मारे फिर रहे!

मज़दूरों का खेतों से नाता टूटा
अब होटलों में प्लेट माँजना
उन्हें ज्यादा अच्छा लगता!
वीरान खेत सब श्मशान-सा लगता!

मेरा कवि मन सहज ही पूछता है -
जिसे अपने गाँव से लगाव नहीं
उसे अपने देश से क्या लगाव होगा?

प्वेत-ओ-पीमां,
त्रिओले

हमारी नागरी लिपि दुनिया की सबसे
वैज्ञानिक लिपि है।

- राहुल सांकृत्यायन

प्रतिभा और गरीबी

सोमदत्त काशीनाथ

हे विभो! मेरी तुमसे यही है याचना
यदि तुम किसी को प्रतिभा देना तो
कभी भी उसे तुम गरीब नहीं बनाना
गरीबों के घर प्रतिभा पल नहीं पाती
कृपा दृष्टि तुम्हारी विफल रह जाती।

प्रतिभा से नहीं किसी का पेट भरता
वह बस शौक बनी रहती जीवन में
जब तक लक्ष्मी नहीं हाथों में आती
सरस्वती पड़ी रहती घर के कोने में
और यूँ ही पड़ी-पड़ी वह तरसती।

प्रतिभा है जड़मति को चेतन बनाती
क्यों एक के पैरों में ज़ंजीर बन रहती
दूसरे का कण्ठहार बन इठलाती
जहाँ प्रतिभा के पुष्प गरीबों में खिलते
वहाँ उन्हें चूसने वाले भँवरे भी मिलते।

सें पोल, फेनिक्स

मनुष्य का दिमाग ही
सब कुछ है,
जो वह सोचता है
वही वह बनता है।
- गौतम बुद्ध

चन्द्रमोहन सोरिफ़ा की पाँच कविताएँ

रिश्तों की महक

कल की तरह आज भी
मैंने रिश्तों को
हिस्सों में विभाजित नहीं किया,
अब भी
ज़िन्दा है मेरे ज़ेहन में
दादा-दादी, नाना-नानी
और बन्धु-बाँधवों की महक,
हर लम्हा
रिश्तों की मिठास
सराबोर होती है मेरी साँसों में

* * *

मखौल

वह वृद्धा
जिसके होठों पर पल्ला मार गया
और चेहरे से मुस्कान गायब है
जब भी घर से निकलती
कई बेढंगे नाम
उसके कदमों से लिपट जाते
अतः मखौल के कठघरे में खड़ी चुपचाप
झेलती रहती अनायास मखौल के डँसना

* * *

दिल की ज़मीन

आओ चलें
अपनी मुट्ठी में बन्द करलें
उन मुलाकतों को एहसासों को
उन लम्हों को,
अब न कोई रंजिश
न बंदिश
न कोई अवरोध
आँखों की गागर में
एक साथ
कई नदियाँ समा गई
अतः दिल की ज़मी को
भला कौन रोक सकता है
अब लहलहाने से।

* * *

नया सम्बल

थोड़ी धूप है
सबका हिस्सा,
थोड़ी छाँव है
सबके सर पर,
इन्हीं को लादे
कन्धे पर
हर कोई जुटाता
जीने का
एक नया सम्बल
सुनते हुए
अपने कदमों की आहटें।

* * *

नज़दीक से

नज़दीक से
देखा हो जिसने
अपने ही घर में
बहते हुए तबाही का ज़िन्दा खून
वही उछालते हैं भरपूर
शब्दों को
अन्धकार से रोशनी से
और गा सकते है अभय हो
हर मौसम का गीत ।

रॉयल रोड
पुद्र-दौर हामलेत

* * *

अपने मिशन में कामयाब होने के लिए,
आपको अपने लक्ष्य के प्रति एकाग्रचित्त और
निष्ठावान होना पड़ेगा।

- अब्दुल कलाम

"प्यारा मेरा मॉरीशस"

- *कीर्ति देवी रामजतन*

"प्यारा मेरा मॉरीशस
है हिन्द महासागर का तारा
इसकी ख्याति देश-विदेश में
है यह श्रेष्ठ और सबसे न्यारा।

एक समय था ऐसा
जब देश था अपना वीराना
उस समय था यहाँ
पुर्तगालियों का, आना-जाना

कालचक्र के चलते
आए यहाँ फ्राँसिसी-अंग्रेज़
और सोने के लालच में
लाए गए हमारे, भारतीय पूर्वज

यातनाएँ सहते हुए भी
हुए न वे कभी हताश
परिश्रम उनका श्रेष्ठ है
दिला दिया सबको, यह एहसास

उनकी शिक्षा और संस्कार से
बढ़ा सन्तानों में उनका आत्मबल-विश्वास
कूद पड़े जो आज़ादी के संग्राम में
भूख न देखी, न देखी प्यास

अन्ततः फहरा ही दिया
अपना चौरंगा, प्यारा-निराला
और दिखा दिया सबको
खून हमारे पूर्वजों का, था लाल, न था काला

आज़ादी के अब
हो चुके पूरे, साल पचास
आइए स्वाधीन मॉरीशस की
दिखाएँ आपको झलक
भरकर मन में, खुशी-उल्लास

पहाड़ों की ऊँचाई से निकलकर
बहती है नदियाँ कल-कल
देखकर सौदर्य जिसके
बढ़ती है मन में, उमंग पल-पल
प्रातः शाम गूँजती है देश में
नाना चिड़ियों की चहक
फैलती है नासिकाओं तक
रंग-बिरंगे फूलों की, खुशबू और महक

देश ने की प्रगति
और अब दिखे न, बैल-गाड़ी
कुछ इन्तज़ार के पल बाद
करेंगे सब, मेट्रो की सवारी

प्यारा अपना मॉरीशस
है बड़ा ही सुन्दर
ढाल बनकर इसके
खड़ा है चारों ओर, समुन्दर

है यहाँ बड़े जंगली जानवर
न कोई विषैला कीड़ा
है यहाँ न लोगों को दुख
न हिंसा, न कोई पीड़ा

है यहाँ संस्कृतियाँ अनेक
और स्वर्ग-सा आभास
देखने जिसको आते, पर्यटक अनेक
लेकर मन में, रम जाने की आस

ऐसा है देश मेरा
प्यारा मॉरीशस
जय मॉरीशस
जय-जय मॉरीशस !

व्याख्याता
संस्कृत विभाग
महात्मा गांधी संस्थान

ग़ज़ल

इश्क में भीगे गीत

- डॉ सुरीति रघुनंदन

इश्क में भीगे गीत हो गए
आप मेरे मन मीत हो गए।
की परवाह ज़माने की कब
आपके संग हम मीत हो गए।
दिल को छू जाएगा सभी के
मिलकर हम संगीत हो गए।
नेकी करके डाली कुएं में
हम नेकी की रीति हो गए।
हार के अपने लोगों से खुद
हम खुद अपनी जीत हो गए।

पूरा समाज हो जाती हूँ

पतंग हूँ
और रहूँगी भी
हर हाल पतंग ही।

मैं कटती भी हूँ
काटने पर
बहुत इतराती भी हूँ
हवा में गाती, झूमती भी हूँ।

जानती भी हूँ तो मैं ही जानती हूँ
कटना मुझे कितना-कितना सुख देता है।
कटना ही तो मुझे
मुक्त करता है व्यक्तिगत इशारों से, बंधनों से।
जश्न मनाती हूँ मैं अपने कटने का।

इसलिए नहीं कटती मैं
कि किसी की हार हो
या जीत हो किसी की।
कटना मुझे सामूहिक करता है।

जब दौड़ते है बच्चे-बड़े मुझे लपकने
मुझ पर ही टिकाए आँखें, ललचाए
भूल कर अपनी तमाम विभाजक रेखाएँ
तो खुशियों के बीज मेरे पोर-पोर से झरते हैं।

मैं मिट कर भी
अमर हो जाती हूँ।
मैं पूरा समाज हो जाती हूँ।

ये तीसरे लोग

कुछ लोग आपको पूछते हैं
कुछ लोग आपको नहीं पूछते
कुछ लोग आपको उपेक्षित करते हैं
ये तीसरे ही
सबसे ज़्यादा खतरनाक होते हैं।

कुछ लोग आपको चाहते हैं
कुछ लोग आपको नहीं चाहते
कुछ लोग आपको चाहने का ढोंग करते हैं
ये तीसरे ही
सबसे ज़्यादा खतरनाक होते हैं

कुछ लोग आपके सामने मिमियाते हैं
कुछ लोग आपके सामने नहीं मिमियाते
कुछ लोग अपना मिमियाना बस भुनाते हैं
ये तीसरे ही
सबसे ज़्यादा खतरनाक होते हैं।

कुछ लोग आपको पूजते हैं
कुछ लोग आपको नहीं पूजते
कुछ लोग आपसे ही ऐंठ कर आपकी प्रतिमा लगाते हैं
ये तीसरे ही
सबसे ज़्यादा खतरनाक होते हैं।

लेखक बन्धुओं से निवेदन

वसंत पत्रिका में अपनी रचनाएँ भेजते समय कृपया इन बातों का ध्यान रखें -

- रचनाएँ अप्रकाशित तथा मौलिक हों।
- रचनाएँ सुस्पष्ट लिखी अथवा टाइप की हुई हो।
- रचनाओं के सभी पृष्ठों पर लेखक का हस्ताक्षर अवश्य होना चाहिए अन्यथा रचनाएँ स्वीकृत नहीं होगी। रचना की तिथि भी लिखें।
- रचनाओं के साथ अपना पूरा नाम और पता लिखें। अपना फोटो भी (यदि हो तो) संलग्न कर सकते हैं, किन्तु अनिवार्य नहीं हैं।
- रचनाओं में प्रस्तुत दृष्टिकोण लेखकों/रचनाकारों के अपने हैं, 'वसंत' पत्रिका की इससे सहमति ज़रूरी नहीं है।
- अपनी रचनाएँ तथा पत्र निम्न पते पर भेजें -

डॉ अलका धनपत
मुख्य सम्पादक - वसंत
अध्यक्षा, सृजनात्मक लेखन एवं प्रकशन विभाग
महात्मा गांधी संस्थान
मोका, मॉरीशस

Dr Alka Dunput
Chief Editor - 'Vasant'
Head, Dept of Creative Writing & Publications
Mahatma Gandhi Institute
Moka,
MAURITIUS

www.sicomgroup.mu |

SICOM GROUP

A lifetime commitment

Insurance | Pensions | Loans | Leasing | Deposits

State Insurance Company of Mauritius Ltd | SICOM Building, Sir Célicourt Antelme St, Port Louis
t: 203 8400 | e: email@sicom.intnet.mu | w: www.sicomgroup.mu

Vasant 142, July 2018
Designed & Printed at the Publishing & Printing Department
Mahatma Gandhi Institute, Moka - Republic of Mauritius.